पामर प्रतीत होते हो, तुम अपने मनमें ऐसा जानते होगे कि हम बहुत हैं यह अकेला हमारा क्या कर सकता है ? यदि तुम्हारे मनमें घमंड हो तो आओ, और मेरे साथ संग्राम करो। वनमें सिंह एकही होता है पर उसके सामने से हजारों सियाल मुँह छिपा कर भाग जाते हैं।

ऐसे असंभव, और अनुचित बात सुनकर चंडसिंह राजा अत्यन्त कोपाग्नि से प्रज्वलित हुआ और कहने लगा अरे सुभटो ! इस दुष्टको पकड़ो और मारो, इसकी जीभ मूलसे उखाड़ डालो। स्वामीके वचन सुनते ही सुभटों ने ज्योंही हाली को पैरों से मारना चाहा त्योंही हाली उठकर अग्निवत् जाज्वल्यमान शरीर से हल उठाकर मारने को दौड़ा, उस अधिष्ठायकदेव के कारण उसके तेजको सहन नहीं करते हुए सुभट दौड़ कर अपने स्वामी की शरण गये।

उस हालीका तेजस्वी रूप देखकर सब राजा लोग परस्पर विचार करने लगे, यह कोई देवता हाली का रूप धर कर आया है ? वीरों को कायर नहीं होना चाहिये, ऐसा साहस रखकर अपने २ सिंहासनों से उठ कर सब राजाओं ने चारों ओर से घेर लिया। तब हाली ने अपना पराक्रम दिखाया, ज्योंही इसने अपना हल चारों ओर घुमाया त्योंही सब राजा दिशाओं में इस प्रकार भागने लगे जैसे सिंह के सामने हाथियों का यूथ (टोला) नष्ट होजाता है।

* श्री जिनेन्द्राय नमः *

श्री विजयचन्द्र केवली विरचित—

अष्ट प्रकार पूजा कथानक।

श्री खरतरगच्छाधिपति श्री सुखसागर जी महाराज के वर्तमान पट्टधर मुनि महाराज
श्री हरिसागर जी महाराज के आज्ञानुगामिनी श्री भावश्री जी महाराज की
शिष्या साध्वी जी महाराज श्री गुणश्री जी, श्रीफूलश्री जी
के सदुपदेश से

अजीमगंज निवासी राजा विसनसिंह जी की धर्मपत्नी, राजा विजयसिंह जी
की माता सुकन कुंवरी ने निज द्रव्य व्यय करके

कुवर गजेन्द्रसिंह रघुवंशी द्वारा
राजपूत एंग्लो ओरियण्टल प्रेस, आगरा में छपवा कर
प्रकाशित किया।

वीर संवत् २४५४।
विक्रम संवत् १९८४।

मूल्य सदुपयोग

इस प्रकार हे भव्य लोगो ! तुम भी अष्ट प्रकार की पूजा का महात्म सुन कर श्री वीतराग की विविध पूजा में आदर करो, जिससे विघ्न रहित रमणीय सुख प्राप्त करोगे और अन्त में शाश्वत सुख प्राप्त होगा।

इस प्रकार केवली विजयचन्द्र जी ने अपने पुत्र हरचन्द्र को आठ प्रकार की पूजा का महात्म कहा। इति श्री जिनेन्द्र पूजाष्टके जल कुम्भ पूजोपम विषये विप्र पुत्री सोमश्री कथानकं अष्टमं समाप्तम्

रामाष्ट नव चन्द्रेऽब्दे (१९८३) मासि पौषे सिते दले ।
दशम्यां बुध वारेऽभूत् पूजाष्टक समाप्तिका ॥ १ ॥

* श्रीमज्जिनेन्द्रायनमः *

भूमिका ।

यः पुष्पैर्जिनमर्चति स्मितसुरस्त्री लोचनैः सोऽर्च्यते । यस्तं वन्दत एकशस्त्रिजगता सोऽहर्निशं वन्द्यते ॥
यस्त स्तौति परत्र वृत्रदमनस्तोमेन स स्तूयते । यस्तं ध्यायति क्लृप्तकर्मनिधनः स ध्यायते योगिभिः ॥

इस श्लोक के अनुसार जैन शासन में पूजा दो प्रकार की कही है, द्रव्य और भाव, श्रावक लोग प्रतिदिन द्रव्य-पूजा से लाभ उठाते हैं और साधुगण अहर्निश भाव पूजा किया करते हैं; परन्तु भावपूजा द्रव्य पूजा के विना कठिन साध्य और दुर्बोध है, अतः द्रव्य पूजा का ही इस पुस्तक में विवरण दिया गया है । इसके मूल सूत्र ज्ञाता, राय पसेणी और जीवाभिगम आदि हैं, इनमें पूजा के कई प्रकार सविस्तर वर्णन हैं, परन्तु मुख्य भेद गन्धादि आठ हैं । इन्हीं आठो को लेकर धर्मोपदेश दाता श्री विजयचन्द्र केवली ने अपने पुत्र राजा हरिश्चन्द्र के सामने अष्टप्रकार की पूजा विधि और प्रत्येक का महात्म्य सविस्तर कथा के साथ दिखाया । गुजराती भाषा में यह पुस्तक छप चुकी है परन्तु उस पुस्तक से हिन्दी जनता को लाभ नहीं पहुचता था, इस कठिनाई को मिटाने के लिये हिन्दी भाषा में छपवाने का प्रयत्न किया गया । इस कार्य में जिन २ सोत्साह धार्मिक भाइयों ने द्रव्य सहायता दी, उनका नामोल्लेख धन्यवाद सहित यहां प्रकाशित किया जाता है ।

१	श्रीमती सुकन कुमारी बाई	५१) रुपये
२	,, उमराव बाई	५१) ,,
३	,, अभयकुमारी (अबजी)	२५) ,,
४	,, चाद बाई	२५) ,,
५	,, धन कुँवरि	२५) ,,
६	,, संपत बाई	१०) ,,
७	,, पूना बाई	१०) ,,
८	श्रीयुत मुकनमल जी की धर्मपत्नी	१०) ,,

इसका भाषानुवाद करने के लिये यहा के सुप्रसिद्ध जैनागम पाठक, जैनशैली ज्ञाता, श्रीदबीर संस्कृत पाठशाला के प्रधानाध्यापक प० भगवतीलाल जी विद्याभूषण से अनुरोध किया गया, इन्होने यह कार्य स्वीकार किया और प्रत्येक प्राकृत गाथा के सुबोधार्थ संस्कृत छाया भी बनाने का परिश्रम उठाया, हम इस कार्य्य के लिये आपके पूर्ण कृतज्ञ हैं।

इस पुस्तक को छपवाने तथा प्रूफ सशोधन करने में "श्वेताम्बर जैन" के सम्पादक आगरा निवासी लोढा जवाहर लाल जी ने पूर्ण परिश्रम किया है-अत वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

विक्रम संवत् १९८१ }
भादवा कृष्णा ११ }   साध्वी गुणश्री

श्रीमती-अनेक गुण सम्पन्न, शान्तादिपदविभूपित श्री भावश्री जी महाराज का संक्षिप्त जीवन चरित्र

भारतवर्ष के पश्चिम देश (वायव्य कोण) में एक प्रसिद्ध जनपद मरुस्थल (मारवाड़) है। इसकी राजधानी जोधपुर है इसके कई प्रान्त (परगने) हैं, उनमें से फलौदी नामक एक परगना है जो ओसवालों का मुख्य स्थान है। कई वर्ष पहिले यहां खरतर गच्छाधिपति सुखसागर जी महाराज विराजते थे। (इनके पट्टाधीश श्रीमान् पूज्यपाद श्री हरिसागर जी महाराज साहब अभी विद्यमान हैं) इनके कई शिष्य साधु और साध्वियां थी, उनमें प्रधान उद्योत श्री जी थी। इनकी पट्टशिष्या लक्ष्मण श्री जी तथा भावश्री जी थी। श्री भावश्री जी का जन्म विक्रम संवत १९१५ में हुआ, आपके पिता का नाम वरडिया मोतीलाल जी और माता का नाम मट्टाबाई था। बाल्यावस्था में आपका नाम मगनबाई प्रसिद्ध था। आपकी अवस्था जब ९ वर्ष की हुई तब वहीं वैद कालूराम जी के सुपुत्र जेठमल जी के साथ माता पिताओं ने विवाह किया, परन्तु पूर्व भव के अशुभ कर्मों ने आपके गृहस्थ सुख को भोग नहीं किया। छः मास भी न बीते कि आपके पतिदेव का स्वर्गवास हो गया।

आपने ८ वर्ष तो प्रतिक्रमणादि धर्मपुस्तक सीखने और गुरु सेवा और तीर्थ यात्रा में विताये। पुनः शुभ कर्मों के उदय से सत्रह वर्ष की यौवनावस्था में विक्रम स० १९३२ वैशाख सुदी एकादशी को शुभ लग्न में चतुर्विध संघ के समक्ष, बड़ी धूम धाम से दीक्षा ग्रहण करली।

अनन्तर भावश्री जी के ६ शिष्या हुई, उनमें प्रधान आनन्दश्री हुई, तदनन्तर भीमश्री जी और चैनश्री जी ने आपके पास दीक्षा ली फिर आपने फलोदी के कानुगा सुजानमल जी की धर्म पत्नी छगनबाई की सुपुत्री हुनासबाई को सं० १९४८ मार्गसिर सुदी १० को दीक्षा दी। इस बाई ने सौभाग्य अवस्था मे अपने पति की आज्ञा लेकर ससार छोड़ना चाहा था आपका विवाह यहा के वेद मुहता मुरलीधर जी के सुपुत्र गेरू जी के साथ हुआ था।

आपने अपने गुरू के साथ गुजरात, काठियावाड़, मेवाड़, कच्छ, जैसलमेर, बीकानेर, जयपुर, जोधपुर आदि प्रसिद्ध स्थानो मे चातुर्मास करते हुये विहार किया। जिनमें कई श्रावक और श्राविकाओ को प्रतिबोध दिया। और एक बाई को दीक्षा देकर उद्यामश्री जी नाम रक्खा। जब सम्वत् १९५६ के वर्ष में जोधपुर में चतुर्मास करने की प्रार्थना आई, तब यहा पधारी और अपने मधुरोपदेश से धर्मोन्नति की। यहा स्त्रियो के लिये कोई धर्मशाला नही थी, किराये के मकानो में साध्वियों का चातुर्मास होता था, श्राविकाओ को परतन्त्र मकान मे अत्यन्त कष्ट होता था। इस कष्ट को मिटानेके लिये आपने यहां के श्राविक श्राविकाओ को धर्मशाला कराने का उपदेश दिया। इस उपदेश का प्रत्यक्ष फल जोधपुर मे श्री केशरियानाथ जी के मन्दिर के पास दफ्तरियो के बास में अभी मौजूद है, जिममे प्रति वर्ष साध्वियो के निवास से इस जोधपुरस्थ श्राविकाओ को पूर्ण लाभ पहुच रहा है।

आपने यहां कई बाइयों के आग्रह से दसमास फिर निवास किया—जिसमें पाली की सरदार बाई और जोधपुर की गट्टूबाई को दीक्षा दी, और उनका नाम क्रमसे उत्तमश्री जी और गुणश्री जी दिया, इसका सविस्तार वर्णन उनके चरित्र में बताया जायगा। फिर वृद्धावस्था के कारण आपने फलोदी मे स्थायी निवास प्रारंभ किया। जब आपने अपनी आयु का अन्त जाना तो जोधपुर से अपनी शिष्या गुणश्री जी को पत्र लिखवा कर फूलश्री जी और शकुनश्री जी को अपने निकट बुला लिया।

विक्रम संवत् १९८२ पवित्र तिथि माघसुदी एकादशी को रात्रि को ८ बजे चढते परिणाम से श्री अर्हन्त भगवान का ध्यान करते २ आपने अपना भौतिक शरीर को त्याग कर देवलोक में गमन किया। आपके शान्तस्वभाव और गम्भीरता आदि गुणो की केवल हमही नही किन्तु उक्त देशो के समस्त श्रावक श्राविकाएं मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर रहे हैं।

प्रथम शिष्या

प्रति दिन धर्मशाला में मध्यान्हिक धर्मोपदेश किया करती, कई श्राविकाएं सुना करती थी। उनमें एक बाई को दीक्षा लेने का भाव उत्पन्न हुआ। इसी जोधपुर नगर के कोलरी मुहल्ले में एक धार्मिक श्रावक गिड़िया हस्तीमल जी रहते थे, आपकी धर्म पत्नी का नाम बाजू बाई था। आपके दो संतान थी जिसमें पुत्र का नाम हेमराज जी था। कन्या का जन्म

संबत् १९४२ माघ सुदी १४ को प्रात काल हुआ। माता पिता ने पुत्र से भी अधिक उत्सव किया, क्योंकि आपकी जन्म पत्रिका में दो ग्रह उच्च थे। जन्म नाम राधा था परन्तु माता प्रेम के साथ फूलकुवर ने नाम के पुकारती थी। जब कन्या की अवस्था १२ वर्ष की हुई तो माता पिताओ को विवाह की चिन्ता लगी। इसी नगर के प्रतिष्ठित धनिक प्रतापमल जी श्रावक धर्मशाला में आया जाया करते थे, आपको धर्म ध्यान, व्याख्यान श्रवण करने की अत्यन्त रुचि थी। आपका पुत्र चौथमल जी भी पितृवत् सर्व गुण सम्पन्न, वणिकविद्या प्रवीण थे। यह देखकर हस्तीमल जी ने इनके पुत्र के साथ शुभ मुहूर्त्त में अपनी कन्या फूलकुवर का पाणिग्रहण कर दिया।

अनन्तर अशुभ कर्मों के परिणाम से आप केवल तीन वर्ष ही सौभाग्यवती रही, अन्त में वैधव्यावस्था प्राप्त कर दीक्षा लेने की उत्कंठा बढ़ने लगी, गुरुणी जो से कई बार प्रार्थना की परन्तु शुभ परिणाम न हुआ और अन्तराय कर्म नही टूटे।

सात वर्ष के वाद शुभ कर्मों के उदय से और गुरु महाराज की अतुल कृपा से विक्रम संवत् १९६४ मंगसिर वदी ५ दिन के ११ बजे शुभ मुहूर्त्त में बड़ी धूम धामसे इस बाई (फूलकुंवर) को दीक्षा दी गई और नाम फूलश्री रक्खा गया।

द्वितीय शिष्या

(मारवाड़ान्तर्गत) गोड़वाड़ के कुलातरा गाव की पोरवाल जातीय चुन्नीबाई भी महाराज के दर्शन करने को कई

बार जोधपुर आई और दीक्षा के लिये प्रार्थना की, अनन्तर संवत् १९७० मार्गशिर वदी ११ के दिन इनको भी दीक्षा देकर प्रभावश्री जी नाम से प्रसिद्ध किया। इन्होंने तेरह वर्ष चारित्र पालकर देवलोक गमन किया।

तृतीय शिष्या

फलौदी के एक श्रावक सौभाग्यमल जी गोलेछा की धर्म पत्नी केशरबाई की सुपुत्री सुगनबाई ने संवत् १९४० भाद्रपद कृष्णा ३ की रात्रि के ९ बजे जन्म ग्रहण किया था, और वहीं वैद रतनलाल जी के सुपुत्र सौभागचंद जी से माता पिताओं ने सं० १९५२ में इस बाई का विवाह किया। पुनः सत्रह वर्ष पर्यन्त गृहस्थाश्रम में सर्व सुख प्राप्त किये, अनन्तर सं० १९६९ में पूर्व अशुभ कर्मोदय से इस बाई को वैधव्य प्राप्त हुआ।

कई बार इस बाईने गुरुजी श्री महाराज से दीक्षा के लिये प्रार्थना की पर सफलता न हुई। जब महाराज विहार करके फलोदी पधारे तो इस सुगन बाई के हृदय में दीक्षा लेने की उत्कण्ठा बढ़ी, और महाराज के ठहराने का आग्रह किया। लाभ देखकर आप ठहर गई और वहीं चतुर्विध संघ के समक्ष संवत् १९७१ माघ सुदी ५ (वसन्त पञ्चमी) के दिन शुभ मुहूर्त में दीक्षा दी और सुगनश्री नाम स्थापन किया।

चतुर्थ शिष्या

जोधपुर के सरादियों के मुहल्ले में एक धार्मिक श्रावक गणेशमल जी कोचर रहते थे, आपकी धर्म पत्नी का नाम

छोटा बाई था। इनके कोई सन्तान नहीं थी, आप विशेष धर्मध्यान करने लगे। अनन्तर सं० १९५६ के भादवा वदी ३ को
रात्रि के ३ बजे एक कन्या का जन्म हुआ। माता पिता ने पुत्र जन्मवत् महोत्सव किया। कुटुम्ब में भी सतान का अभाव
था अतः सबही विशेष उत्सव और लालन, पालन करने लगे, स सज्जन बाई रखा।

जब यह बाई बारह वर्ष की अवस्था को प्राप्त हुई तब पिता ने उत्तम वर ढूंढते २ इसी नगर के सिंघी गुलाबचन्द
जी के सुयोग्य पुत्र गणपतमल जी से विवाह किया। तीसरे वर्ष में ही इस बाई को अशुभ कर्मों ने वैधव्य प्रदान किया, अनन्तर
इस बाई ने धर्मशाला में माता के साथ जाना आना आरम्भ किया, और गुरुणी जी महाराज की आज्ञा से फूलश्री जी ने
इसको अक्षर बोध करा कर प्रति क्रमणादि सिखा दिया।

तीन वर्षों में जब यह सज्जन बाई धर्म क्रिया में प्रवीण होगई और सुसराल वालों से आज्ञा प्राप्त करली, तब
गुरुणी जी ने दीक्षा देना अङ्गीकार किया। फिर संवत् १९७४ आषाढ वदी २ गुरुवार को कन्या लग्न मे गुरुणी जी महा-
राजा ने दीक्षा दी और दौलतश्री जी के नाम से प्रसिद्ध किया।

आपके चरणो की दासी
फूलश्री

वीर संवत २४५३
भाद्रपद कृष्ण ११

* श्री जिनेन्द्रो जयति *

श्रीमती परम पूजनीय गुरुणी जी महाराज श्री गुणश्री जी साहिबा का चरित्र।

"उत्पद्यन्ते विलीयन्ते बुद्बुदाइव वारिणि"

इस असार संसार में उसी प्राणी का जीवन सफल है और वह ही अमर है, कि जिसने अपनी आत्मा का हित करते हुए अन्य प्राणियो का भी हित किया हो। यो तो कई जन्म पाते और मर जाते हैं। जैसे पानी के बबूले (बुद्बुदे) उठते हैं और वहीं लीन हो जाते हैं।

हम आपको एक गुणों की राशि, सच्चरित्रा, शान्त मूर्त्ति, वयोवृद्ध एक तपस्वनी का चरित्र सुना कर अपने को सार्थक मानेंगे। पहिले बड़ी गुरुणी जी महाराज के चरित्र में थोड़ासा सूत्रपात किया गया था, अब उसका सविस्तर भाष्य यथा मति प्रकट किया जाता है।

सुना जाता है कि पाच सौ वर्ष पहिले इस मरुस्थल की राजधानी जोधपुर नगर को राव जोधा जी ने बसाया था, उन दिनो में ओसवाल वंश की आबादी ओसिया मे थी, पुनः धीरे २ यहा आकर ओसवाल बसने लगे।

इस वंश परम्परा में सुप्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित बादलमल जी भणसाली सिहपोल मुहल्ले में निवास करते थे, इनकी धर्म पत्नी का नाम सरदार बाई था। जो एक अमूल्य पुत्रीरत्न के पैदा करने से श्राविका वर्ग में सरदार रूप ही बनी। शुभ

उपर सूचित तीनो पुत्रों के अनन्तर विक्रम संवत् १९०३ ज्येष्ठ सुदी ५ को कन्या का जन्म हुआ। इस बालिका का नाम माता पिता ने शरीर की सुन्दरता और सगठन के कारण गट्टूबाई दिया। माता के साथ धर्मशाला और देव दर्शनों में प्रतिदिन जाना, और पढ़ी लिखी धार्मिक बालिकाओं से बात चीत करना बचपन से ही आपको रुचिकर था।

पिता ने जब पुत्री की विवाह अवस्था देखी तब माता के आग्रह से शीघ्र ही बारह वर्ष की अवस्था में विवाह करना ठान लिया और इसी नगर के धनिक शिरोमणि, धार्मिकरत्न भंडारी उम्मेदचन्द जी के सुयोग्य पुत्र पृथ्वीचंद्र जी के साथ धूमधाम से कन्या का पाणिग्रहण करदिया। कुछ वर्ष व्यतीत हुये तब चरित्र नायका का चित्त गृहस्थ सुख से विमुख सा होगया। केवल लोक व्यवहार से सुसराल में जाना आना होता था। कर्मोदय से आपके पतिदेव २० वर्ष की अवस्था में ही परलोक सिधार गये। फिर धर्म ध्यान करते और दीक्षा समय की प्रतीक्षा करते २ अपने अन्तराय कर्मों की प्रबलता से प्रायः ३४ वर्ष बड़े कष्ट से व्यतीत किये। मध्य में कई बार आपने गुरुणी जी महाराज भावश्री जी से दीक्षा के लिये प्रार्थना की सुसराल में श्वशुर से राजकार्य (हाकिमी) के कारण कई वर्षों तक दीक्षा की आज्ञा नही मिली अत आपने २० वर्ष तक चार विकृति (विगह) का त्याग किया और धर्मकार्य्य में दृढ निश्चय कर लिया।

जब यहा भावश्री जी पधारी और चातुर्मास किया, तब आपने अपने देवर विसनचंद जी से कहा कि मुझे दीक्षा की आज्ञा दो, जब उनकी टालाटोली देखी तो स्पष्ट कह दिया कि आज्ञा न दोगे तो मै अपना शरीर त्याग कर दूगी। ऐसा

दृढ़ निश्चय देख कर व्याख्यान में आना बंद करा दिया और गुरुणी जी से प्रार्थना की कि आप व्याख्यान न करें। आपने कहा आज्ञा देना न देना तुम्हारा काम है। हम अपना कर्त्तव्य धर्मोपदेश बंद नहीं करेंगे। गद्दूबाईने लोक लज्जा का त्याग कर पुरुष समुदाय में बैठना आरंभ कर दिया, अन्त में आपने पार्श्वनाथ जी की प्रतिमा को कोलरी मुहल्ले के मंदिर में मूलनायक रूप में स्थापन करवाया और भैंरुबाग में दादा साहब (श्री जिनकुशल सूरि जी) की छतरी बनवा कर चरण स्थापन किये।

इन दोनो धर्म कार्यों ने मानो आपसे अन्तराय कर्म दूर कर दो मास में ही आज्ञा दिला दी। आपको अत्यन्त हर्ष हुआ और गुरुणी महाराज को ठहरने की प्रार्थना की "जैसा भाव प्राणी रखता है वैसा ही फल मिलता है" इस वचन के अनुसार विक्रम सं० १९५७ वैशाख सुदी १२ को शुभ मुहूर्त में आपने दीक्षा ली और आनन्द पूर्वक गुरु कृपा से महाव्रत पालने लगी। आपने दीक्षा के अनन्तर १४ चौमासे किये। जिनमें कई चौमासे गुरुणी जी के साथ और कई अपने शिष्याओं के साथ किये। वृद्धावस्था के कारण जोधपुर में आपके चौमासे अधिक हुए।

अब अन्तमें यहां ही (जोधपुर में) धर्म ध्यानार्थ विराजमान हैं। आपकी शिष्य सम्पदा भी बढ़गई है। इनको श्रीमती गुरुणी जी महिमा का जितना चरित्र उपलब्ध हुआ है उतना संक्षेप से दिया है, विशेष के लिये प्रयत्न किया जा रहा है।

गा

सफलता होने से फिर प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जावेगा।

वीर संवत् २४५३
भाद्रपद कृष्णा ११

गुरुणी जी श्री फूलश्री जी महाराज
की पादपद्म सेविका
शकुनश्री, दौलतश्री

॥ श्री मज्जिनेन्द्राय नमः ॥

महावीरं प्रणम्यादौ, नरदेवेन्द्रपूजितम् ।
जिन पूजाष्टकस्यात्र, हिन्दी-भाषां करोम्यहम् ॥

॥ अथ 'श्री अष्ट प्रकार पूजा कथानकं' लिख्यते ॥

गाथा = विहडियकम्मकलङ्कं, कयकेवलेतेयतिहुयणुज्जोयम् ।
सुरनरकुमुयाणंदं , नमह सया वीरजिनचन्दम् ॥ १ ॥

संस्कृतच्छाया = विहतकर्मकलङ्कं, कृतकेवल तेजस्त्रिभुवनोद्योतम् ।
सुरनरकुमुदानन्दं, नमत सदा वीरजिनचन्द्रम् ॥१॥

सम्बन्ध = धर्मोपदेश दाता श्री।विजयचन्द्र केवली अपने पुत्र राजा हरचन्द्र के सामने अष्ट प्रकार की पूजा का महात्म्य कहते हैं ।

व्याख्या-निरन्तर दूर किया है अष्ट कर्म रूपी कलङ्क जिस ने, केवल ज्ञान के प्रकाश से किया है तीन लोक में उद्योत जिसने और देवता तथा मनुष्यों के हृदय रूप कुमुदों (रात्रि विकासी कमल) को प्रफुल्लित करने वाले श्री जिनचन्द्र भगवान् को सर्व काल, हे भव्यो ! तुम नमस्कार करो । यहां जिनचन्द्र पद से चौवीसवें तीर्थकर श्री महावीर स्वामी जान लेना चाहिये ।

गाथा = जीइयसायसमीरण-समोहयं गलइ मेहविंदव्व ।
अन्नाणं जीवाणं तं नमह सरस्सई देवीम् ॥२॥

संस्कृतच्छाया = जीवितसातसमीरण--समूहितं गलति मेघवृन्दमिव ।
अज्ञानं जीवानां तां नमत सरस्वतीं देवीम् ॥ २ ॥

व्याख्या = जिस श्रुत देवता के सम्बन्ध से जीवों का अज्ञान, वायु के वेग से मेघों के समूह के जैसे, नाश को प्राप्त होता है—उस सरस्वती देवी को हे भव्यो ! नमस्कार करो ।

॥ अधुनाऽष्टविधपूजाप्रकारान् दर्शयति ॥

गाथा = वर गन्ध-धूव--चोक्खकणेहि, कुसुमेहिं पवरदीवेहिं ।
नेवज्ज-फल-जलेणं, अट्ठ विहा होइ जिणपूया ॥३॥

संस्कृतच्छाया = वरगन्ध-धूपाक्षतकणैः कुसुमैः प्रवरदीपैः ।
नैवेद्यफलजलैः अष्टविधा भवति जिनपूजा ॥ ३ ॥

व्याख्या = श्री वीत राग भगवान् की-पूजा के आठ भेद क्रम से दिखाते हैं-
पहिली पूजा प्रधान वासक्षेप, दूसरी धूप, तीसरी अक्षत, चौथी पुष्प, पंचमी दीपक, छठी नैवेद्य, सातवीं फल और आठवीं जल पूजा होती है ॥ ३ ॥

तत्र तावत्वासक्षेपपूजाफल माह---

गाथा = अङ्गं धन्नसुगन्धं, वर्णं रूवं सुहं च सोहग्गम् ॥
पावइ परमपयंपिहु, पुरिसो जिणगन्धपूआए ॥ ४ ॥

संस्कृतच्छाया = अङ्गं धन्य सुगन्धं, वर्णं रूपं सुखं च सौभाग्यम् ॥
प्राप्नोति परम पदमपि खलु, पुरुषो जिन गन्ध पूजया ॥ ४ ॥

व्याख्या = जो मनुष्य भगवान् की पूजा वासक्षेप से करता है वह इस लोकमें शरीर में अच्छी सुगंध, अच्छा रूप, अच्छा वर्ण, अच्छा सुख और सौभाग्य (यश) प्राप्त करता है और परलोक में परमपद अर्थात् मुक्ति-पद प्राप्त करता है ।

वासक्षेप पूजायां दृष्टान्त माह—

गाथा = जह जयसूरनिवेणं, जायासहिएणतईय जम्मंमि ।
संपत्तो निव्वाणं, जिणंद वरगन्धपूयाओ ॥ ५ ॥

संस्कृतच्छाया = यथा जयशूरनृपेण, जायासहितेन तृतीयजन्मनि,
सम्प्राप्तो निर्वाणं, जिनेन्द्रवरगन्धपूजातः ॥ ५ ॥

अर्थ = जैसे विद्याधरपति राजा जयशूर ने अपनी स्त्री सुखमती के साथ इस भव से तीसरे भव में श्री जिनराज की वासक्षेप पूजा के प्रभाव से मुक्ति पद पाया ॥ ५ ॥

अथ जयशूरकथा ।

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में प्रधान वैताढ्य नामक पर्वत के ऊपर दक्षिण दिशा की पंक्ति में गजपुर नामक नगर था। वहां विद्याधरों का स्वामी जयशूर नामक राजा पुत्रवत् प्रजापालन करता हुआ राज्यकरता था। उसकी पटरानी सुखमती थी, वह उसके साथ सुख से राज्य सुख भोगता था—एक बार उस रानी सुखमती के उदर में देवलोक से च्युत होकर, उत्तम स्वप्नों से सूचित, कोई सम्यक् दृष्टि देवता गर्भ रूप उत्पन्न हुआ। उस

रानी के तीसरे मास में एक दोहद उत्पन्न हुआ। जिसकी चिन्ता से रानी प्रतिदिन दुर्बल होने लगी। एक दिन रानी को अत्यन्त कृश देख कर राजा ने पूछा, हे प्रिये! इतनी दुर्बल क्यों होती है? तेरे मन में क्या मनोरथ है? इस प्रकार जब राजा ने पूछा तब रानी प्रसन्न होकर कहने लगी, हे स्वामी! मैं मन में ऐसा विचार करती हूँ कि आप के साथ अष्टापद पर्वत तीर्थ पर जाकर वहां जो श्री वीतराग भगवान् की प्रतिमाएं हैं, उनकी वासक्षेप से पूजा करूं तो मेरा मनोरथ सफल हो।

ऐसी शुभ बात सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और एक प्रधान विमान की रचना कराकर रानीसहित उसमें बैठकर वेग के साथ वह अष्टापद पर पहुंचा। वहां अच्छे सुन्दर पटह, ढोल, शंख और काहली आदि मनोहर वाद्य बाजने लगे। राजा ने रानी सहित विधि पूर्वक जिन प्रतिमा को मज्जनादि कराकर बड़े हर्ष के साथ वासक्षेप से पूजन की।

अनन्तर प्रसन्न हुए राजा रानी पर्वत से उतर कर एक वन में पहुंचे, वहां एक वन के कुञ्ज से दुःखदायी दुर्गन्ध प्रकट हुई, जिसको नासिका नहीं सह सकती थी। ऐसा जानकर रानी आश्चर्य पाकर अपने भर्त्तार से पूछती है, हे स्वामिन्! यह प्रधान सुगन्धवाले पुष्पों से प्रफुल्लित वन में यह किस की दुर्गन्ध आती है? यह मुझ को अत्यन्त असुन्दर लगती है। यह सुनकर राजा बोला हे प्रिये! क्या तू नहीं जानती है? यह तेरे मुख के सामने ऊंची भुजा करके खड़े हुए मुनिराज विराजमान हैं। यह बड़ी शिला के तट पर खड़े हुए हैं। इनका देह

अचल है। निर्मल सूर्य के सामने दृष्टि है। भयंकर कठिन तपस्या करते हैं। इनकी कान्ति देवताओं से भी अधिक है। तेज़ से सूर्य समान है। मध्यान्ह काल में सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से तपे हुए शरीर से पसीना होता है जिस से देह का मैल भीग जाता है पुनः शरीर से दुःखदायी दुर्गन्ध प्रकट हुई है। ऐसे राजा के वचन सुनकर रानी बोली। इस मुनिराज का धर्म तो सुन्दर है, श्री वीतराग प्रभु ने शास्त्रों में निरूपण किया है, यदि प्रासुक (फासू) जल से साधु को स्नान कराया जाय तो कुछ दोष नहीं। ऐसा सुनकर राजा ने कहा हे सुन्दरी ! ऐसी बात मत कहो।

देखो जो साधु होते हैं वे संयम रूप जल से ही स्नान करके सुखी और पवित्र होने हैं। यह बात सुन रानी ने कहा मैं ज़रूर स्नान कराऊंगी, जिससे इस साधु की यह दुर्गन्ध मिट जायगी। पुन पति ने एकवार,दोवार निषेध किया तथापि स्त्रियों के हठीले स्वभाव से पति के वचन को नहीं माना। तब राजा अपनी प्रिया का हठ जानकर पर्वत के झरणों का जल वृक्ष के पत्तों का दोना बनाकर प्रासुक जानकर मॅगाया और रानी को सौंपा; रानी ने प्रसन्न होकर अपना मनोरथ पूर्ण जाना। पुनः अत्यन्त प्रसन्न हो उस साधु के शरीर को अत्यन्त स्नेह से स्नान कराया और वस्त्र से पूछ कर सुगन्धित द्रव्य और बावन चन्दन से लेप किया, फिर दोनों ही राजा रानी मुनि को वन्दन कर, विमान पर चढ़ कर अगाड़ी चले।

--हे मुनिराज ! मुझ पापिनी ने आपके शरीर के मैल की घृणा की, उसकी क्षमा चाहती हूँ, इस तरह कहती हुई मुनि के चरणों में बार २ गिरी और क्षमा मांगी।

तब वृषभ समान मुनीश्वर उसके वचन सुनकर बोले, हे भद्रे ! तू मन में खेद मत धारण कर, मेरे सामने ऐसी आलोचना (आलोयणा) लेने से सब कर्म निवृत्त हुए परन्तु एक जन्म में इन कर्मों को अवश्य भोगना पड़ेगा।

इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर वे दोनों विद्याधर राजा रानी, केवलज्ञानी मुनि को प्रणाम कर अपने नगर को आये। राजा ने रानी का इस प्रकार मनोरथ (गर्भिणी स्त्री का दोहला) पूर्ण हुआ समझा और दोनों सुख से रहने लगे।

एक दिन अच्छे समय शुभवेला में और शुभयोग के साथ सुखमती रानी ने सुखकारी पुत्र को पैदा किया जैसे पूर्व दिशा प्रकाशमान सूर्य को पैदा करती है। पांच धायों से पाला जाता हुआ वह कुमार यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ। अब राजा रानी ने उस पुत्र को राज्यभार दे, दीक्षा ली और प्रति दिन गुरु के चरण

कमलों की सेवा करते रहे। इस प्रकार राजा चारित्रपाल कर अन्त में शुभ ध्यान से अनशान पालन कर सौधर्म देवलोक में गया और रानी सुखमती भी मर कर उसी देवता की देवी उत्पन्न हुई।

वहां देवताओं के सुख भोगकर वह सुखमती सौधर्म देवलोक से च्युत होकर इसी भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर नगर में जितशत्रु राजा की रानी की कुक्षि में कन्या उत्पन्न हुई। सुन्दर रूप और विशाल नेत्र जान कर पिता ने उसका नाम मदनावली रक्खा। चन्द्रमा के कला के समान और कल्पलता के तुल्य प्रति दिन बढ़ती हुई, शरीर के सौभाग्य से यौवनावस्था को प्राप्त हुई।

उसको विवाह योग्य जान कर राजा ने स्वयम्बर रचना कराई वहां कई देश देशान्तरों से विद्याधर किन्नर और अन्य राजाओं के कुमार इकट्ठे हुए। उन सब को छोड़ राजकन्या ने सुरपुरी नगरी का वासी राजा सिंहध्वज को वरमाला पहिनाई। मदनावली का विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ, राजा ने उस को सर्व अन्तःपुर में वल्लभ की और अपने प्राणों से भी प्यारी समझने लगा। बलदेव वासुदेव की तरह परस्पर अत्यन्त स्नेह हुआ। राजा ने ऐसा उपकार मन में जाना कि इस प्रिया ने बड़े २ विद्याधर नृपतियों को छोड़ कर स्वयंवर मंडप में मुझ पादचारी को अङ्गीकार किया, इससे वह बहुत प्रीति रखता था।

उस मुनि के शरीर की सुगन्धि पवन से सब वन में फैल गई। वहां के भँवरे पुष्पों को छोड़ कर साधु के शरीर पर आकर बैठ गये और उपसर्ग करने लगे। कठिन दुःख सहन करता हुआ साधु धैर्य्य धारण कर अपने ध्यान में लग गया और मेरु पर्वत समान अचल हो गया। इस प्रकार दुःख सहते हुए उसको एक पक्ष व्यतीत हुआ।

फिर वे राजा रानी तीर्थ वन्दना, पूजा और भावना कर उसी मार्ग से वहां आये जहां मुनिराज उपसर्ग में खड़े थे। पास आने पर भी रानी को मुनीश्वर दृष्टि में न आये। तब स्वामी से पूछा, हे प्रियतम्! जो साधु यहां देखे थे वे कहां गये? उस जगह पर तो काला वृक्ष वनाग्नि से जला हुआ मालूम होता है। जब वे दोनों अत्यन्त समीप गये तब देखा कि काले भ्रमर सुगन्धि लोभ से मुनिराज के शरीरपर बैठे उन्हें डस रहे हैं।

जो इन्होंने उपकार किया था वह अवगुण हो गया, यह क्षण भर विचार कर विद्याधर राजा ने उन भंवरों को झटक कर शरीर से अलग किया, तब मुनि के उपसर्ग का अन्त आया। चार घातिया कर्म (ज्ञाना-वरणी, दर्शनावरणी, मोहनी कर्म और अन्तराय कर्म) क्षय हुए। जब सब दुःखों का नाश करने वाला मुनि को

केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। तब चार जाति के देवता संतुष्ट होकर केवल ज्ञान की महिमा करने को आये। निकाय वासी, भवनपति व्यंतर ज्योतिषिक और वैमानिक ये चार प्रकार के देवताओं ने इकट्ठे होकर पुष्पों से सुगन्धित जल की वर्षा की।

इस अवसर पर विद्याधर राजा जयशूर और रानी सुखमती भी पास आये और वन्दना, स्तुति कर सामने खड़े हो हाथ जोड़ कर इस प्रकार विनती करने लगे । हे मुनिराज ! जो हमने अज्ञान से आशातना अविनय किया है उसे आप क्षमा करें। यह बात सुन कर मुनीश्वर बोले हे राजन् ! मन में खेद मत करो, क्योंकि यहां किसी का बस नहीं चलता है। जिस जीव ने जैसे २ कर्म बांधे हैं वे उसी तरह निश्चय भोगे जाते हैं और शास्त्रों में यह भी कहा गया है कि जो मनुष्य साधु के शरीर के मैल और पसीनों की घृणा (जुगुप्सा) करता है, वह पुरुष अनेक भवों में कर्म दोष के कारण घृणितपना पाता है। और भी शास्त्र में कहा है कि कई मनुष्य मैल से मैले हैं, कई रज से मैले हैं, कई धूलि से और कई भस्म से मैले हैं, परन्तु यह मैले नहीं हैं। जो पाप कर्म करते हैं उनको तीनों लोकों में सबसे बढ़कर मैला जानना चाहिये।

ऐसे मुनिराज के वचन सुन वह सुखमती रानी बहुत भयभीत हुई कहने लगी कि—

इस प्रकार परस्पर विषय सुख भोगते हुए उन दोनों का समय बीतता था। अनन्तर पूर्व जन्म कृत दोष उदय आया। पूर्वभव में इसने जो मुनिराज के शरीर की दुर्गन्ध से घृणा की थी वह कर्म उदय आया, उस के सुन्दर देह से दुर्गन्ध उछल सब जगह अन्तःपुर में फैल गई। किसी से नहीं सहा गया, कोई भी इसके पास न रहा, सब दूर चले गये। उस रानी के शरीर की यह दशा देख राजा कई वैद्य और मंत्रवादी और तन्त्रवादियों को बुलाने लगा। सब लोगों ने कई उपाय किये पर रोग दूर न हुआ, अन्त में उन्होंने यह कह दिया कि यह रोग असाध्य है। तब राजाने रानी को घोर अटवी में भेज दिया और वहां दूर२ सुभट उसकी रक्षा के लिए रख दिये।

वहां रानी मन में धिक्कार देती हुई और दुःख भोगती हुई इस प्रकार चिन्ता करने लगी कि मेरे इस जीवन से मरना अच्छा है देखो ! मेरा पहले कैसा अच्छा सुन्दर शरीर था वह क्षणमात्र में नष्ट हुआ। हाय !! इस कर्मरूप कृतान्त ने मेरी कैसी विडम्बना की। मैंने पूर्व भव में बड़े घोर पापकर्म किये हैं उनका यह फल है। रे जीव ! अब तू क्यों उदास होता है ? इस प्रकार विचार करती, शुद्ध और पवित्र परिणाम से अपने दुःख का समय बिताती थी। जिस सुन्दर वृक्ष के नीचे रहती थी उसी की एक शाखा पर शुक का जोडा रहता था। जिस कोटर में ये दोनों निवास करते थे वह मानो राजभवन के झरोखे के तुल्य प्रतीत होता था। एक दिन रानी पलंग

पर बैठी हुई ऊपर दृष्टि करती है तो सूआ का जोड़ा दिखाई दिया। जब रात्रि का समय हुआ तब शुकराज अपनी स्त्री से कहने लगा। हे प्रिये! एक पहर रात्रि व्यतीत हो गई। तब शुकी बोली हे प्रियतम्! आप बड़े यशस्वी हैं मेरे योग्य कार्य हो वह आज्ञा करें, मैं आपकी सेवा करने को सर्वदा तत्पर हूँ।

इस प्रकार दोनों की ब तें सुनकर मदनावली ने प्रसन्न होकर विचार किया कि कोई मुझको इस दुःख से दूर होने का उपाय बतावे तो अच्छा हो। इतने में शुकराज अपनी स्त्री से कहता है कि मैं एक आश्चर्य कारिणी वार्त्ता सुनाना चाहता हूँ यह सुनकर शुकी बोली, हे प्रियतम् अचंभा वाली कथा आप मुझे अवश्य कहें, जिससे मेरा मन संतोष पावे। तब कीर कहने लगा पूर्व भव में एक जयशूर नामक राजा था, उस की प्रधान स्त्री सुखमती थी। वह जब गर्भवती हुई तब मनोरथ पूर्ण करने को राजा उसको लेकर अष्टापद तीर्थ गया। वहां गन्ध पूजा की, मार्ग में मुनिराज के शरीर को स्नान कराया, पीछे घर आया, अन्त में पुत्र हुआ, पुत्र को राज्य समर्पण कर दीक्षा ली, देवलोक गये। वहां से सुखमती का जीव च्युत होकर मदनावली कन्या हुई। वह राजा के साथ व्याही गई, वह अब रानी यहां वन में रहती है।

ऐसे शुक के वचन सुनकर मदनावली को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, पूर्व भव का वृत्तान्त सब

जाना। अपनी आत्मा की निन्दा करने लगी। जो इस शुक ने मुझको अपने पूर्व भव का वृत्तान्त कहा यदि यह ही मुझे इस कर्म से छूटने का उपाय बतावे तो अच्छा हो क्योंकि मैंने मनुष्य भव पाया है इसको धर्म से सफल करना योग्य है इस प्रकार विचार करने लगी।

तब शुकी बोली हे नाथ! वह मदनावली कहां है? तब शुक ने कहा, यह तुम्हारे सामने वृक्ष के नीचे पलँग पर बैठी है, यह ही मदनावली रानी है। इसने पूर्व भव में मूर्खता से साधु के शरीर से घृणा की थी उसका यह फल भोगती है। यदि यह श्री जिनराज की गन्ध पूजा दिन में तीन बार (प्रातः, मध्यान्ह, सायंकाल) भक्ति से करे तो सात दिन में इसका दुःख दूर हो जाय। यह वचन शुक के सुनकर रानी प्रसन्न हुई और पक्षी का वचन हितकारी जाना, और उस कीर के वचन अत्यन्त प्रिय लगे। वे दोनों पक्षी इस प्रकार उसको उपाय बताकर शीघ्र अदृश्य हो गये।

अब मदनावली आश्चर्य को प्राप्त हुई मन में विचार करने लगी यह कीर युगल मेरे चरित्र को कैसे जानता है? जब मेरे शरीर से यह वेदना चली जाय तो घर पर जाऊं और राजा से मिलकर प्रसन्न हूँ। जब वहां कोई ज्ञानी मुनीश्वर आवेगा तब इस शुक चरित्र की बात पूछ कर संदेह निवृत्त करूंगी। ऐसा विचार कर

पहिले श्री जिनराज की प्रतिमा मंगाकर सुगन्ध वास से पूजने लगी। विधिपूर्वक त्रिकाल संध्या के समय वीतराग भगवान् को भक्ति से पूंजती थी। इस प्रकार पूजा करते २ सातवें दिन जैसे मन्त्र के बल से भूत पिशाचादिक नष्ट होते हैं उसी तरह उसके शरीर का दुर्गन्ध रोग नष्ट हो गया।

जब रानी ने अपने शरीर का रोग नष्ट हुआ देखा तो सन्तुष्ट हुई, उसके नेत्र आनन्द से प्रफुल्लित हो गये, जो मनुष्य वहां उसकी रक्षा के लिये रहते थे, वे मंगलीक बधाई राजा को जाकर देने लगे। हे राजन् ! आपके पुण्य प्रभाव से रानी के शरीर की दुर्गन्धि लीन हुई। ऐसे हर्ष के वचन सुन राजा मानो अमृत की वर्षा से सिक्त हुआ, संतोष को प्राप्त हुआ। उन चौकीदार मनुष्यों को बहुत दान दिया और अपना परिवार साथ ले वन में गया। उस रानी को बड़े उत्सव के साथ हाथी पर चढ़ाकर नगर में लाया और राज भवन में प्रवेश किया। अत्यन्त संतुष्ट हुआ राजा नगर में महा महोत्सव कराने लगा। वह बड़े स्नेह से समय विताता था।

एकदा राजा की सभा में उद्यानपाल ने आकर विनती की, हे महाराज ! मनोहर नामक बनखण्ड में अमरतेज नामक मुनिराज पधारे हैं। तप संयम पालते हुए, शुक्ल ध्यान से ध्यान करते हुए, उस मुनिराज को लोकालोक प्रकाश करनेवाला केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया है। ऐसी बात सुनकर राजा मन में प्रसन्न हुआ। रानी

के उत्सव से भी यह उत्सव बड़ा जानकर, आनन्द पूर्वक परिवार साथ लेमुनीश्वर को वन्दना करने के लिये रानी सहित वनखण्ड को गया। और भी बहुत से नगर के लोग वन्दना करने को वहां आये।

वहां तीन प्रदक्षिणा देकर चरण कमल को प्रणाम कर सकल परिजन और परिवार के साथ सामने राजा बैठ गया। गुरु की शुश्रूषा और धर्म सुनने की इच्छा उत्पन्न हुई, तब केवली ने धर्मदेशना प्रारंभ की। जब मुनि धर्मदेशना दे चुके, तब रानी मदनावली ने अवसर पाकर पूछा।

हे मुनिनाथ! हे भगवन्! वह शुकराज कौन था? जिसने मुझको दुःख में पीड़ित जानकर उपदेश सुना। इतना बड़ा उपकार किया।

तब केवली कहते हैं हे भद्रे! यह शुक तुम्हारे पूर्व भव का भर्ता था। वह देव भव में देवता उत्पन्न हुआ, उसने तुम्हारा बड़ा दुःख जानकर तुम्हारे स्नेह से कीर मिथुन रूप हो तुम्हारे पास आकर उपाय बताया। यह देवता कभी तीर्थंकर की देशना में गया था, वहां तुम्हारा सब चरित्र सुना, तब तुम्हारे दुःख दूर करने को पूर्व जन्म के स्नेह से जिनराज की गंध से पूजा करने का उपाय बताया।

केवली महाराज के यह वचन सुन बहुत संतोष को प्राप्त हुई। फिर पूछने लगी, हे भगवन्! यहां

आपके केवल ज्ञान की महिमा करने को बहुत से देवता आये हैं, सो क्या वह शुक भी आया है ? यदि आया हो तो कृपा कर मुझको दिखाइये। इस बात का मुझे बड़ा कौतुक है। तब केवली बोले यह तुम्हारे मुख के सामने बैठा है। मणि और रत्नों से जटित मुकुट और कुंडल स्वर्ण आभूषण धारण किया हुआ है सो यह शुक देवता है और तुम्हारे पूर्व भव का पति है।

इस प्रकार केवली के मुख से वचन सुनते ही मदनावली उसके पास गई और कहने लगी हे सज्जन देव ! तुमने मेरे पर बहुत उपकार किया है। मैं आपका पीछा उपकार क्या कर सकती हूँ ? मैं मनुष्य जाति आप का उपकार करने को असमर्थ हूँ। यदि कोई उपकार इस जन से हो सके तो कृपा कर कहिये।

तब देवता ने कहा, हे भद्रे ! तू भी मुख से उपकार करने को समर्थ है, वह उपकार बताता हूँ। आज से सातवें दिन देवयोनि से च्युत होकर मैं वैताढ्य पर्वत पर विद्याधर राजा का पुत्र होऊँगा। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। तू मुझको प्रतिबोध देकर धर्म सुनाना। यह उपकार जरूर करना।

ऐसी बात देवता के मुख से सुनकर मदनावली प्रसन्न हुई और उस वचन को अंगीकार कर कहने लगी–तथास्तु। देवता सब देवताओं के साथ अपने स्थान पर गया।

मदनावली अपने स्वामी से कहने लगी। हे नाथ! मैंने देवलोक का सुख भोगकर आपको पति अंगीकार किया। अब मनुष्य जन्म का सुख भोग रही हूँ। आप बड़े पुण्यवान हैं, आपके प्रताप से सब दुःख क्षय हो गये। परन्तु अब संसार का दुःख क्षय हो, ऐसा कीजिये। तब राजा ने कहा, हे सुन्दरी! विधाता ने बड़े पुण्य के योग से यह मनुष्य देह दी है, यह रत्न समान असूल्य पदार्थ बार २ मिलना बड़ा दुर्लभ है। सो हे रानी! हाथ में आया हुआ रत्न वृथा कैसे गमाया जाय? यह मार्ग चूकने के लायक नहीं है।

ऐसे राजा के वचन सुनकर रानी ने कहा हे नाथ! तुम्हारे हृदय की बात मैंने सर्व जानली। परन्तु इस संसार में किसी के साथ प्रतिबंध करना योग्य नहीं। जहां संयोग है, वहां वियोग अवश्य है। संसार में किस को संयोग और वियोग नहीं हुआ?

इस प्रकार वैराग्य रंग से रंगे हुए रानी के वचन सुनकर भी राजा ने बहुत स्नेह और मोह से जब रानी को आज्ञा नहीं दी तब रानी ने तत्काल गुरु के हाथ को अपने मस्तक पर स्थापन कराया और दीक्षा ग्रहण की।

राजा मुनिराज को वन्दना कर रानी के वियोग से वर्षा कालमें मेघधारा के समान आंसू गिराता हुआ गदगद स्वर से रुदन करने लगा। पुनः विलाप करता हुआ मदनावली आर्या को हित शिक्षा दे धर्म सुनकर

गुरु के चरण कमल को वन्दना कर वहां से उठ अपने राजभवन में आया और विस्तार के साथ वीतराग भाषित धर्म करने लगा।

अब वह मदनावली आर्या गुरु की आज्ञा के अनुसार आर्यिकाओं के साथ विहार करती हुई अत्यन्त कठिन तप करने लगी और शुद्ध भावना धारण करती थी।

वह देवता भी सातवें दिन देवलोक से च्युत होकर विद्याधर राजा के पुत्र उत्पन्न हुआ। द्वितीया के चन्द्र समान बढ़ने लगा। उसका नाम मृगाङ्ककुमार रक्खा गया। जब वह यौवनावस्था को प्राप्त हुआ। तब मदनावली आर्या विहार करती हुई उस विद्याधर के आश्रम द्वार के पास आई और निश्चल ध्यान लगा लिया। रत्नों और कांचन से जटित विमान में बैठे हुए मृगाङ्ककुमार ने उसको देखा। अपनी शुद्ध वस्त्रादिक की कांति से फिरने लगा।

कुमार ने मदनावली को पूर्व भव की इच्छा के साथ देख कर कहा, हे कृशोदरी ! तू ऐसी उग्र तपस्या क्यों करती है ? इस बात का कारण मुझे कह, यदि तेरे भोग सुख की वांछा है तो मेरे कहे वचन सुन, मैं खेचर विद्याधर राजा का कुँवर हूँ, मृगाङ्ककुमार मेरा नाम है रत्नमाला नामक राजपुत्री के साथ पाणिग्रहण

करने को जाता हूँ। बड़े महोत्सव के साथ यहां आया हूँ। मैंने तुमको देखते ही स्नेहवश होकर इच्छा की है और यहां खड़ा रहा हूँ। इस प्रकार बहुत मीठे मोहितकारक वचन कहता है और अनेक काम चेष्टा भी दिखाता है पर वह साध्वी किंचित्‌मात्र ध्यान में नहीं चली। संयम गुणों में सावधान होकर उसके वचनों पर विश्वास नहीं करती है। निश्चल होकर मेरु चूलिका की भांति दृढ़ होगयी।

तब कुमार फिर स्नेह से कहता है। हे सुभगे! इतना कष्ट तपस्या में क्यों करती है? इन कष्टों को छोड़ दे-और इस विमान में आकर बैठ जा, मुझे रत्नमाला से कोई प्रयोजन नहीं। तेरे साथ ही मैं उत्तमसुख भोगूंगा। इसलिये तू हमारे विद्याधरों के नगर में आकर प्रवेश कर।

इस प्रकार वह जैसे बार २ पूर्वभव का स्नेह दिखाता है वैसे ही यह साध्वी तप में दृढ़ होकर शुभ ध्यान ध्याती है पर उसके वचन पर प्रतीत नहीं करतीहै। उसके विकार सहित वचन सुनकर आतुर नहीं हुई। क्योंकि इसने बड़ी संयम शक्ति धारण कर रक्खी है।

मृगाङ्कुमार स्नेह से मूर्च्छित हो अनुराग दिखाता हुआ अनुकूल उपसर्ग करता है, परन्तु इस साध्वी को शुक्ल ध्यान में रहते हुए विमल केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। चार प्रकार के देवता उसकी महिमा करने को

आये और उसके मस्तक पर पुष्पों की वर्षा करने लगे। यह कुमार विस्मित हुआ उसके मुख कमल की तरफ देखता है।

तब उस साध्वी ने केवल ज्ञान से उसको पूर्वभव का पति जानकर सब बात कही। हे महानुभाव! इस भव से दूसरे भव में तुम विद्याधर राजा खेचर हुए थे, मेरे साथ राज्यसुख और विद्याधर की पदवी भोगी थी। फिर अन्त में राज्य छोड़, दीक्षा लेकर संयम पालन कर देवलोक में उत्पन्न हुए। वहां से च्युत होकर फिर विद्याधर हुए। इस प्रकार मनुष्य और देव संबंधी सुख भोगे हैं—तथापि अभी तक स्नेह नहीं छोड़ा। यह मोहनी कर्म संसार के बढ़ाने वाले हैं, इस लिये तुम एकाग्र चित हो कर धर्म के विषय में उद्यम करो।

उस केवल ज्ञान धारण करने वाली साध्वी के ऐसे वचन सुनकर जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। पूर्व जन्म का सब संबंध स्मरण किया। इस संसार से विरक्त हो प्रबल संवेग को धारण कर अपने हाथ से ही मस्तक के केश उखाड़ दिये और उस साध्वी को वन्दना कर बोला हे भगवती! साध्वी! आपने जो पूर्व भव का संबंध बताया वह सत्य है। ज्ञाति स्मरण ज्ञान से मैंने प्रतिबोध प्राप्त किया है। अभी आपने मेरे पर बड़ा उपकार किया है। बहुत क्या कहूँ, आपने मुझ को धर्म का बोध देकर संसार रूप अंधकूप में पड़ते हुए को बचाया, इसी

कारण मैंने सम्यक्त्व अंगीकार कर वीतराग प्ररूपित पंचमहाव्रत की दीक्षा लेकर तप में आदर किया। इस प्रकार वन्दन सी स्तुति कर, अपने आत्मा की निन्दा कर, आलोचना दे कर उग्र तपस्या के प्रभाव से घन घातिक कर्मों की राशि को हन कर शुक्ल ध्यानके चतुर्थ पाद को पहुंच गया। वहां निर्मल ज्ञान का उपार्जन कर शाश्वत मुक्ति स्थान को पहुंच गया।

नव आर्या मदनावली भी बहुत वर्षों तक केवल ज्ञान की पर्याय पालन कर भव्य जीवों को प्रतिबोध दे-संसार के दुःखों से छुड़ा कर, स्वय शाश्वत स्थान को पहुंच गई।

इति श्री पूजाष्ठ के गंधसुवासक्षेपोपरि मदनावली कथा संपूर्णम्

—:—

मूलगाथा = मयनाहि चन्दणा गरु, कप्पूर सुगन्ध मध्यधूवेहिं।
पूजइ जो जिणचंदं, पूजिज्जई सो सुरिंदेहिं ॥१॥

संस्कृतच्छाया = मृगनाभि चन्दनागरु, कर्पूर सुगन्ध मध्य धूपैः।
पूजयति यो जिनेन्द्रं, पूजयतेऽसौ सुरेन्द्रैः ॥ १ ॥

व्याख्या—अब धूप की पूजा कहते हैं-कस्तूरी, चन्दन, अगर, कपूर, और अन्य सुगन्धित द्रव्यों से वने हुए धूप से जो मनुष्य श्री जिनचन्द्र बीतराग को पूजता है, वह प्रधान देवेन्द्रों से अथवा अन्य राजादिकों से पूजा जाता है ॥ १ ॥

मूलगाथा = जह विणयंधर कुमरो, जिणन्द वर धूब दाण भत्तीरा ।

जाओ सुरनर पूजो सत्तम जम्मेण सिद्धिगओ ॥ २ ॥

संस्कृतच्छाया = यथा विन धर कुमारः, जिनेन्द्रवर धूपदान भक्त्या ।

जातः सुरनर पूज्यः, सप्तम जन्मनि सिद्धिं गतः ॥ २ ॥

व्याख्या—जैसे विनयंधर नामक कुमार श्री जिनराज के प्रधान धूप दान की भक्ति से देवता और मनुष्यों के पूजनीय हुआ और पूजा करने वाले भव से सातवें भव मुक्ति में पहुंचा।

अथ विनयंधर कथा प्रारंभ्यते ।

इसी भरतक्षेत्र में पोतनपुर नाम नगर है। वहां सूर्यवत् प्रतापी एक राजा राज्य करता था, उसका नाम वज्रसिंह था। उसको सिंह की उपमा इसलिये दी गई है कि शत्रुरूपी गजेन्द्रों को मारने में सिंह समान था।

उसके सकल अन्तःपुर में माननीय, हृदयको हरण करने वाली, मनको मोहित करने वाली कमला नामकभार्या है और दूसरी देह से निर्मल और गुणों से विमल शीलवती विमला नामक रानी है। उस राजा की प्रीति दोनों ही के साथ निविड़ है। दोनों ही की कुक्षि से पैदा हुए कमल और विमल दो पुत्र हैं। दोनों ही रूप और गुणोंसे युक्त हैं। ये दोनों दैवयोग से एक ही दिन में उत्पन्न हुए हैं। उत्तम गुण और शुभ लक्षणों को धारण करने वाले दोनों को देख कर आश्चर्य प्राप्त हुआ राजा सुख से राज्य का पालन करता था।

एकदा वहां शास्त्रज्ञ, अद्भुत प्रश्न बताने वाला एक नैमित्तिक आया और राजसभा में आकर राजा को आशीर्वाद दिया। राजाने उसकी आव भक्ति की और फल फूल से तथा वस्त्र आभरणादिक से सन्तुष्ट कर सादर अपने पास बैठाया और पूछा। हे नैमित्तिक! तुम शास्त्र के बल से कहो कि इन दोनों कुमारो में से कौन मेरे राज्य का अधिकारी होगा? ऐसे राजा के वचन सुन ज्योतिषी बोला, हे महाराज! गणित शास्त्र के बल से कहता हूँ, यह कमला रानी का पुत्र आपके पाले हुए राज्य को नाश करेगा और द्वितीय राजकुमार, लक्षणवान्, निर्मलगुणरत्नों का घर विमला रानी का पुत्र तुम्हारे राज्य को पालन करने में धुरंधर होगा। राजा इन वचनों को सुन अभ्यन्तर कोप से जाज्वल्यमान होता हुआ अपने सेवकोंको बुला कर इस प्रकार आज्ञा देने लगा कि, हे सेवको! तुम इस कमलप्रभा के पुत्रको वन में छोड़ आओ। उन सेवकोंने राजा का आदेश पाकर उसी रात्रि में

जहां रानी कमलप्रभा पुत्र सहित सोती थी, जाकर उसके गोद से कुंवर को लेलिया। उस समय रानी अत्यन्त
विलाप करने लगी, हाय ! हाय ! दस दिन के जन्मे हुए मेरे पुत्रको कौन दुष्ट लिये जाते हैं ?

वे राजा के चाकर उस बालक को ले उजाड़ वन में छोड़ कर पीछे राजा के पास आकर बोले, हे महा-
राज ! जहां कोई जीव जन्तु नहीं है, ऐसे भयङ्कर वन में छोड़ आये हैं। ऐसे वचन सुन राजा भी अश्रुपात
करने लगा, बहुत दुखी होकर पछताने लगा, क्षणमात्र भी मोह से विलाप करता रुकता नहीं था। कुँवर को
जलांजलि दी पहले क्रोध आया था पर अब मोह शब अपने अंग से पैदा हुए पुत्र पर स्नेह दर्शाने लगा। उधर वह
कमलप्रभा रानी भी अपने पुत्र के विरह से भांति २ के शब्दों से रोने लगी और उसका हृदय बहुत दुःखोंसे भर
गया है। करुणा के शब्द सुन कर नगर के लोग इकट्ठे हुए और उन्होंने ने भी कुमार के विरह से दुःख धारण किया।

इधर यह बालक अटवी में अकेला पड़ा था, वहां एक भारुण्ड नाम पक्षी आया और बालक को चोंच
से उठा कर आकाश में उड़ गया।

पृथ्वी पर से किसी दूसरे भारुंड पक्षी ने उसको देखा और उडकर बालक के मांस के लोभ से उसके
साथ लडाई करने लगा। आपस में युद्ध होने लगा, इतने में चोंच से छूट कर वह बालक नीचे कुआ में गिर पड़ा। उसी

कुआ में कोई वटाऊ मार्ग चलता प्यास के मारे जल ढूंढता पड़ गया था, एक बार इस पान्थ को गीष्म में सूर्य की किरणों से अत्यन्त तृषा लगी तब यह कुआं पर जल देखता था इतने में नेत्रों में अंधेरी आई और भीतर पड़ गया। पान्थ ने कान्ति से उद्योत करते हुए तेजस्वी बालक को ऊपर से उल्कापात के जैसे पड़ते हुए देखा, और पानी में पड़ने के भय से लम्बी भुजा फैला कर पकड़ा और पुत्र के जैसे छातीसे लगा लिया, और चिन्ता करने लगा जितना मुझे मरने का दुःख नहीं है उतना इस बालक का दुःख है, यह कैसे जीवेगा? मैं इसके भूख प्यास का क्या प्रबन्ध करूंगा।" फिर विचार कर हृदय में धैर्य धारण किया और कहने लगा इस बालक ने बड़ा आयुः कर्म संचित किया है तो निश्चय उसकी रक्षा होगी और यह जीवित रहेगा। यह कह कर छाती से लगा लिया और रोते हुए बालक को आश्वासन दिया।

इतने में दैवयोग से वहां सुधन नामक सार्थवाह अपनी सार्थ संपदा से युक्त वहां डेरा लगाकर उस वन में विश्राम लिया है। इसी अवसर में कुए पर जल ग्रहण करनेको उस सार्थवाहके पुरुष आये और भीतर से एक पान्थ और बच्चे के रोने का शब्द सुना-उन्हों ने सार्थवाह से कहा वह भी सुनकर आश्चर्य के साथ परिवार सहित वहां आकर कुए में पूछा तुम कौन हो। तब पान्थ ने संक्षेप से अपना वृत्तान्त कहा—तब सार्थवाह

ने बुद्धिमानी से लकड़ी और डोरी से बच्चे सहित पान्थ को बाहर निकलवाया और बड़े आदर और उत्साह से अपने डेरे में ले गया। वहां पान्थ ने सार्थवाह को प्रणाम किया और कहा—मुझे और इस बालक को जीवित दान देने वाले आप हो, मैं आपका बड़ा उपकार मानता हूँ। तब सार्थवाह बोला तुम कौन हो—और यह बालक कौन है? तुम्हारे और इसके कैसे सम्बन्ध हुआ? मुझे आप दोनों की बात सुनने का बड़ा कौतुक है, मेरे पूछने का तात्पर्य यह है कि यह बालक तुम्हारा ही है या अन्य का? तब पान्थ कहने लगा हे सार्थवाह! मैं बड़ा दरिद्री और दुःखी हूँ इससे संतप्त हुआ परदेश को चला था, कितना ही मार्ग उल्लंघन कर इस अटवी में आया और मुझे बहुत तृषा लगी तब जल गवेषण करता हुआ इस कुए में गिर गया। वहां ही पड़े हुए मैंने आकाश मार्ग से उतरते हुये और रोते हुये इस बालक को देखा, मुझको करुणा उत्पन्न हुई मैंने बांह से पकड़ कर छाती से लगा लिया। यह हमारा वृत्तान्त है—मैं इस बालक का पालन करने को असमर्थ हूँ। इसलिये हे सत्पुरुष! सार्थवाह! इस बालक को आप ग्रहण करो मैंने आपको सन्तुष्ट होकर दिया है।

सार्थवाह ने बड़े हर्ष के साथ उस बालक को अंगीकार किया और उस पान्थ को विधि सहित बहुत द्रव्य दान दिया और विदा किया। वह धनपति भी मार्ग में प्रयाण करता २ अपने घर आया उस राजकुमार को

अपनी स्त्री सेठानी को दिया। कुटुम्ब और परिवार में बधाई बांटी गई। बहुत उत्सव पूर्वक विनयंधर नाम स्थापन किया। सेठानी ने उसको अपने पुत्र के समान पालन किया।

एकदा वह सार्थवाह अपने परिवार के साथ दूसरे नगर कांचनपुर में व्यापार के लिये गया, साथ में विनयंधर पुत्र को भी लिया। वहां वह कुमार सार्थवाह के पुत्र समान दीखता था, परन्तु नगर के लोग उसको देखकर आपस में यह बात करते थे कि यह सार्थवाह के चाकर का पुत्र मालूम होता है। यह बात सुन कर मन में बहुत दुःखी हुआ विचार करता है जो वचन शास्त्र में कहे हैं वे सत्य हैं, जैसे मनुष्य पराये घर में काम करते हुए कौन २ दुःख नहीं पाते हैं?

एक समय वह कुमार क्रीडा करता हुआ श्री जिनराज के मन्दिर में पहुंचा। वहां साधु महाराज धर्म कथा का व्याख्यान देते थे यह भी बैठ कर सुनने लगा। वहां जिन पूजा का प्रस्ताव चल रहा था, महिमा करते हुए साधु ने कहा जो मनुष्य कस्तूरी, चंदन, अगर, कपूर, सुगन्धित द्रव्य सहित धूप से पूजा करे तो सुरेन्द्र और नरेन्द्रों को पूज्य होवे। यह सुनकर विनयंधर कुमार विचारने लगा जो सदा काल श्री वीतराग भगवान् की धूप से पूजा करते हैं वे धन्य हैं। मैं उस समय असमर्थ हूँ, सो एक दिन में भी जिन पूजा का उदय नहीं होता है,

ने बुद्धिमानी से लकड़ी और डोरी से बच्चे सहित पान्थ को बाहर निकलवाया और बड़े आदर और उत्साह से अपने डेरे में ले गया । वहां पान्थ ने सार्थवाह को प्रणाम किया और कहा—मुझे और इस बालक को जीवित दान देने वाले आप हो, मैं आपका बड़ा उपकार मानता हूँ । तब सार्थवाह बोला तुम कौन हो—और यह बालक कौन है? तुम्हारे और इसके कैसे सम्बन्ध हुआ? मुझे आप दोनों की बात सुनने का बडा कौतुक है, मेरे पूछने का तात्पर्य यह है कि यह बालक तुम्हारा ही है या अन्य का ? तब पान्थ कहने लगा हे सार्थवाह ! मैं बड़ा दरिद्री और दुःखी हूँ इससे संतप्त हुआ परदेश को चला था, कितना ही मार्ग उल्लंघन कर इस अटवी में आया और मुझे बहुत तृषा लगी तब जल गवेषण करता हुआ इस कुए में गिर गया । वहां ही पड़े हुए मैंने आकाश मार्गसे उतरते हुये और रोते हुये इस बालक को देखा, मुझको करुणा उत्पन्न हुई मैंने बांह से पकड़ कर छाती से लगा लिया । यह हमारा वृत्तान्त है—मैं इस बालक का पालन करने को असमर्थ हूँ । इसलिये हे सत्पुरुष ! सार्थवाह ! इस बालक को आप ग्रहण करो मैंने आपको सन्तुष्ट होकर दिया है ।

सार्थवाह ने बड़े हर्ष के साथ उस बालक को अंगीकार किया और उस पान्थ को विधि सहित बहुत द्रव्य दान दिया और विदा किया । वह धनपति भी मार्ग में प्रयाण करता २ अपने घर आया उस राजकुमार को

अपनी स्त्री सेठानी को दिया। कुटुम्ब और परिवार में बधाई बांटी गई। बहुत उत्सव पूर्वक विनयंधर नाम स्थापन किया। सेठानी ने उसको अपने पुत्र के समान पालन किया।

एकदा वह सार्थवाह अपने परिवार के साथ दूसरे नगर कांचनपुर में व्यापार के लिये गया, साथ में विनयंधर पुत्र को भी लिया। वहां वह कुमार सार्थवाह के पुत्र समान दीखता था, परन्तु नगर के लोग उसको देखकर आपस में यह बात करते थे कि यह सार्थवाह के चाकर का पुत्र मालूम होता है। यह बात सुन कर मन में बहुत दुःखी हुआ विचार करता है जो वचन शास्त्र में कहे हैं वे सत्य हैं, जैसे मनुष्य पराये घर में काम करते हुऐ कौन २ दुःख नहीं पाते हैं ?

एक समय वह कुमार क्रीड़ा करता हुआ श्री जिनराज के मन्दिर में पहुंचा। वहां साधु महाराज धर्म कथा का व्याख्यान देते थे यह भी बैठ कर सुनने लगा। वहां जिन पूजा का प्रस्ताव चल रहा था, महिमा करते हुए साधु ने कहा जो मनुष्य कस्तूरी, चदन, अगर, कपूर, सुगन्धित द्रव्य सहित धूप से पूजा करे तो सुरेन्द्र और नरेन्द्रों को पूज्य होवे। यह सुनकर विनयंधर कुमार विचारने लगा जो सदा काल श्री वीतराग भगवान् की धूप से पूजा करते हैं वे धन्य हैं। मैं इस समय असमर्थ हूँ, सो एक दिन में भी जिन पूजा का उदय नहीं होता है,

इस लिये इस मेरे मनुष्य जन्म को धिक्कार है, मैं ऐसा धर्महीन होकर नर भव कैसे पालिया ? इस तरह विचार करता हुआ अपने घर पहुंचा । सार्थवाह ने इसको उदास आता हुआ देखकर कारण पूंछा और गन्ध धूप सहित एक धूपका पुटक (पुड़ियो) दिया । विनयधर कुमार ने उसको पाकर सन्तुष्ट चित्त होकर कहा आज शुभ अवसर प्राप्त हुआ । जितने इसके परिवार वाले थे उन्हों ने भी एक २ धूप पूडा ले २ चण्डिका देवी के मन्दिर में जाना प्रारम्भ किया और उस देवीके अगाड़ी धूपदानी में डाल दिये । विनयंधर कुमार धर्मपर अनुराग रखता हुआ श्री वीतराग भगवान् के मन्दिर में गया और हाथ पैर धोकर वस्त्र से नासिका बांधकर बड़ी भक्ति से धूपदानी में धीरे २ पटकने लगा ।

वह धूप का गन्ध पृथ्वी और आकाश में फैलगया । कुमार ने धूप भाजन हाथ में लेकर प्रतिज्ञा की कि जब तक यह धूप भगवान् के आगे लगना रहेगा तबतक मैं अपने घर नहीं जाऊंगा । ऐसा अभिग्रह लिया ।

उस समय आकाश में यक्ष और यक्षिणी विमान पर बैठ कर कहीं जाते थे, तब यक्षिणी उस कुंवर की भक्ति देखकर बोली, हे स्वामिन् ! देखो यह युवा जिनराजके आगे सुगन्ध धूप करता है आप क्षणभर विमान ठहराओ तो इस धूप का परिमल (गन्ध) ग्रहण करें । इसकी कैसी शक्ति है? यह शक्ति और भक्ति वाला प्रतीत

होता है, एकाग्रचित्त से धूप दिये जाता है और अपने स्थान से चलित नहीं होता। यक्षने स्त्री जाति का हठ स्वाभाविक जान कर स्त्री को बहुत समझाया, परन्तु वह नहीं मानती है और अगाड़ी नहीं चलती है। तब वह यक्ष विनयंधर कुमार को स्थान से चलित करने को विषधर (सर्प) रूप बनाने लगा—और पास जाकर काला भयंकर सर्प रूप से उस राजकुमार को चलित करने लगा। सब लोग सर्प देख कर वहां से दौड़ गये और विनयंधर कुमार से कहा तू भी धूप भाजन छोड़ कर चला जा नहीं तो यह भयंकर काला सांप खा जावेगा, परन्तु राजकुमार अपना अभिग्रह छोड़ कर स्थान से चलित नहीं हुआ।

तब वह यक्ष विचारने लगा कि सब लोग मेरे डर से दौड़ गये पर वह कुमार स्थान से चलित नहीं हुआ, अब मैं ऐसा उपद्रव करूं जिस से यह यहां से उठ जाय। ऐसा विचार कर अपने शरीर को बढ़ाकर उस के शरीर को चारों तरफ से वेष्टित कर (लपेट) लिया। और बल से राजकुमार के शरीर की हड्डियों को तोड़ने लगा। प्रत्येक अंगों में पीडा करता है। ऐसा भयंकर उपद्रव उसने किया तो भी वह यक्ष कुमार को स्थान से चलायमान नहीं कर सका। तब यक्ष प्रत्यक्ष हो इस का सच्चा परिणाम जान कर बोला–हे सत्यवादी पुरुष! तुम धन्य हो, मैं आप के इस अतुलसाहस से संतुष्ट हुआ हूँ, आप जो वस्तु चाहते हो कहो–वह अभी उत्पन्न कर

दूं। इसी अवसर में राजकुमार का धूप का अभिग्रह भी संपूर्ण हुआ। प्रतिज्ञा सफल हुई, तब यक्ष को प्रणाम करके विनय के साथ कहने लगा, हे देव! आपके दर्शन से ही मैंने सर्व मनोरथ पालिये। तब यक्ष ने फिर कहा, हे वत्स! मैं तेरे पर अधिक सन्तुष्ट हुआ हूँ। शास्त्र में कहा है कि देव दर्शन और सत्पुरुष वचन कभी निष्फल नहीं होते। यह कह कर सन्तुष्ट हुए यक्ष ने सर्प के विष को मिटाने वाला रसायन सदृश एक दैदीप्यमान रत्न दिया और बोला कि हे कुमार! और कोई भी तेरा काम हो तो कहदे अभी पूर्ण करता हूँ।

तब विनयंधर कुमार यक्ष को नमस्कारकर विनय के साथ बोला, हे देव! यदि आप मेरे पर अत्यन्त प्रसन्न हुए हो तो मेरा कर्मकर (दास) का नाम नष्ट हो जाय और मूल कुल प्रगट हो, तब मेरे चित्त को सन्तोष उत्पन्न हो। यह सुन यक्ष बोला, तथास्तु, यह कहकर अन्तर्द्धान हो गया। राजकुमार भी श्री जिन भगवान् को प्रणामकर भक्ति के साथ इस प्रकार कहने लगा, हे जिनेन्द्र-स्वामी! मैं अज्ञान से अन्धा हूँ। आपके गुण प्रकट करने और स्तुति करने को असमर्थ हूँ-'मैंने आज जो श्री जिनराज के आगे धूप दान किया है उसका फल प्राप्त हो' इस प्रकार कहकर बारंबार जिनराज को प्रणाम कर भाव वन्दना करता हुआ, अपनी आत्मा को कृतार्थ मानता हुआ अपने घर आया।

उसी नगर में रत्नरथ नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी कनकावली थी, उसके भानुमती नामकी कन्या बहुत से पुत्रों पर हुई अतः राजा को अत्यन्त वल्लभ थी। एक दिन रात्रि के समय सोती हुई उस को भयंकर विषैले काले सांप ने पैर में (डसा) काटा। जिस से राजकुल में बड़ा भारी कोलाहल मचा। "दौड़ो दौड़ो" काले साप ने राजकुमारी को काटा! बचाओ २!! ऐसा शब्द सब राजभवन् में फैल गया। राजा भी सुन कर वहां आया और पुत्री के स्नेह से विलाप करने लगा, नेत्रों के जल से कपोलों को धोने लगा। राजपरिवार और परिजन सब दुःखित हुए बैठे हैं।

जब राजाने कुंवरी का शरीर निश्चेष्ट और अचेतन देखा तो स्वयं मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। अग्नि से जले हुए अंग पर खार के समान यह दूसरा राजा का दुःख जानकर सब लोक अन्तःपुर और सब प-रिवार सहित उच्च स्वर से रोने लगे। कई वृद्धपुरुष जल की बूंदों से राजाके शरीर को छांटने और बावन चन्दन शरीर में लेप करने लगे। पंखा हिलाने से राजा को कुछ चैतन्यता प्राप्त हुई। तब राजा ने कई विषवैद्य, मन्त्र वादी, गारुड़ी आदिकों को बुलाया। उन्हों ने भी बहुत उपचार अपनी २ बुद्धि के अनुसार किये परन्तु चेष्टा रहित होने से कुछ भी गुण न हुआ। राजा उसको निश्चेष्ठ जान कर स्मशान भूमि में ले आया। चन्दन काष्ट से चिता बनाई गई–पास में ज्वलत् अग्नि स्थापन की गई, इस अवसर में जो कुछ हुआ वह चित्त लगा कर सुनो।

वही विनयंधर कुमार किसी गांव में कुछ काम करनेको गया था। पीछे आते हुएने प्रेतवन (स्मशान) में बड़ा भारी कोलाहल और बाद्यों का निर्घोष सुना और राजादि लोगों को रोते और विलाप करते देखा। यह देख राजकुमार ने लोगों से पूछा, यहां क्या है ? तब लोगों ने पिछला सब हाल कह सुनाया। यह सुनकर विनयंधर कुमार बोला, तुम अपने स्वामी से कहो कि एक नर राजकन्या को जीवन दान देता है। यह सुन श्रेष्ठपुरुषों ने जाकर राजा से कहा। तब राजा हृदय में बहुत प्रसन्न हुआ, कुमार से बोला जो आप इस राज कन्या को जीवित करदें तो मैं आप को इसी कन्या के साथ अर्धराज्य सौंपता हूँ-और जो आप इसके सिवाय कुछ मांगोगे तो भी दूंगा। बार २ क्या कहूँ, कुँवरी को जीवित करने से मेरे प्राण भी आप के आधीन है।

तब कुमार राजा को नमस्कार करके बोला हे देव ! ऐसा मत कहो जब आप का काम सिद्ध हो जाय तब जैसा उचित हो वैसा करना अभी तो आप अपनी पुत्री को मुझे दिखावें। ऐसा कहते ही राजा ने उस कन्या को चिता से निकलवा कर विनयंधर कुमार के आगे मंगाई। उस समय बहुत लोग इकट्ठे हो गये।

कुमार ने भी भूमि शुद्ध करी, गोवर से मण्डल बनवाया, उसपर अक्षत, पुष्प, चंदन से पूजन कर धूप दीपादि स्थापन किये। उस यक्ष का अपने मन में स्मरण करता हुआ–उस रत्न के पानी से कुमारी के शरीर पर छींटा दिया। कुमारी को कुछ चेतना प्राप्त हुई सर्प विष दूर हुआ। फिर वहां से उठकर इधर उधर सब लोगों

को देखा, राजा ने उसको अपने गोद में लेली, बड़े हर्ष को प्राप्त हुआ, मानो अपना शरीर अमृत की धारा से सींचा जाता है। पुत्री को गद्गद् स्वर से पूछता है–हे वत्से। तेरे शरीर में पीड़ा कम हुई? पुत्री ने कहा पिता जी! मेरे शरीर में कुछ भी वेदना नहीं है। यहां चिता क्यों बनाई गई? स्मशान भूमि में मुझे लाने का क्या कारण है? यह मण्डलादि क्यों किये गये? इतने आदमी क्यों इकट्ठे होकर रुदन और विलाप करते हैं? यह सब सुन राजा बोला, हे पुत्री! तुझे काले सांप ने डसा था। जब तू निश्चेष्ट हुई और वैद्य तथा–मन्त्रवादी अलग हुए, तब यहां स्मशान भूमि में तू लाई गई है, परन्तु इस हितकारी पुरुष ने तुझे और मुझे प्राणदान दिया है, यह निष्कारण परोपकारी है। यह सुन कन्या बोली हे पिता जी! यदि यह बात इसी प्रकार है, तो यह पुरुष मेरा प्राणप्रिय भर्ता है। ऐसी बात सुन राजा प्रमुख सब लोगों ने "अच्छा २" वचन उच्चारण किया।

पीछे हाथी के स्कंध पर कुमार सहित कन्या को बैठाकर हर्ष, मंगलगीत, वाद्य और उत्सव सहित नगर में प्रवेश करा कर राजा अपने घर ले आया।

वहां पुत्री का जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम से कराया और प्रधान मन्त्री को बुलाकर कुमार की मूलशुद्धि पूछी। तब मंत्री ने कहा, यह सार्थवाह के पास कर्मकर (दास) है, ऐसा सुनते हैं, असली बात सार्थवाह को पूछने से पता लगे। तब राजा ने सुधन सार्थवाह को बुलाया और पूछा। तब उसने कहा हे स्वामी! इसकी

असली बात तो मैं नहीं जानता, मैंने तो कूपादिक से पान्थ द्वारा पाया है। यह बात सुनकर राजा वज्राहतवत भूमि पर मूर्छित हो गिर गया। मन्त्री ने शीतलोपचार कर चेतना प्राप्त कराई। राजाने कहा, जिसका कुल, माता, पिता, न जाना जाय, उसको अपनी लड़की किस प्रकार दी जाय ? और यदि आदर के साथ यह कन्या इसको नहीं दूंगा तो मेरा वचन असत्य हो जायगा। इस प्रकार चिन्ताग्रस्त मन से व्याकुल हो रहा है।

इसी अवसर में वह यक्ष प्रत्यक्ष आकर राजा के पास कहता है—हे महाराज ! यह कुमार पोतनपुर नगर के स्वामी वज्रसिंह राजा का पुत्र है। कमला रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। राजा ने दूसरे पुत्र पर राग रखकर इसे द्वेषवश वन में छुड़वा दिया। वहां से भारुंड पक्षी ने पकडा, दूसरे पक्षी से परस्पर युद्ध करते चोंच से गिर कर कुंआ में प्रवेश किया। वहां पहिले ही पड़े हुए पान्थ ने इसे पकड़ छाती से लगाया। सार्थवाह ने दोनों को बाहर निकलवाया। पान्थने बालक सार्थवाह को दिया, यह वृत्तान्त है। ऐसा कह वह यक्ष अन्तर्हित हो निज स्थान गया।

राजा ने यक्ष के वचन सुन कर कहा, यह मेरा भांणेज है, कमला मेरी बहिन है। मन में हर्ष धारण कर विनयंधर कुमार के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया और अर्धराज्य की संपत्ति सानन्द सौंपदी।

विनयंधर राजकुमार भानुमती राजकन्या और राज्य सुख प्राप्त होकर हर्ष को प्राप्त हुआ और उसके मूल वंश की शुद्धि भी प्रगट हो गई, कर्मकर नाम दूर हुआ, यह सब बातें श्री जिनराज के धूप दान के प्रभाव से हुई।

अनन्तर वह राजकुमार अपने पिता पर बड़ा अमर्ष (क्रोध) धारण करता हुआ अपनी सेना लेकर अपनी जन्मभूमि पोतननगर की तरफ चला। उस समय उसकी माता कमला रानी के बांमनेत्र और बामभुजा फरकने लगी। उसी दिन,उसके पिता बज्रसिंह को भी खबर लगी, कि कोई राजा आप के नगर को जीतने के लिये सेना लेकर आता है। यह भी अहंकार धारण कर अपनी सेना सजा कर शस्त्रादिक से सजधज कर नगर से बाहर निकला। मार्ग में दोनों के सग्राम होने लगा, परस्पर गज घटा से गजघटा, रथ से रथ, अश्व से अश्व पैदल सिपाहियों से पैदल भिड़ने लगे। दोनों पिता पुत्रों को आपस में संबन्ध का ज्ञान नहीं रहा–इससे राजा अनेक प्रकार के शस्त्र सजा खड्ग, बाण, धनुष, भाला, बरछी प्रमुख पुत्र पर चलाने लगा। पुत्र ने भी पिता पर धनुष से कई बाण चलाये, आपस में वर्षा की तरह बाणधारा बरसने लगी।

इसी अवसर में एक बाण राजाने छोड़ा वह पुत्र के वक्षस्थल में ज़ोर से लगा, अत्यन्त क्रुद्ध होकर पुत्र ने पिता के रथ की ध्वजा, छत्र, बाणों से काटकर भूमि पर गिरादी, और एक बाण ऐसा छोड़ा जिससे राजा

स्तम्भित हो गया। चित्र में पुतली की भांति खड़ा २ देखता है पर कुछ कर सकता नहीं। राजा भीतर क्रोध से जलता, संताप से तपता, पूर्ण व्याकुल हो गया। उसके सुभटों ने बावना चंदन से शरीर में विलेपन किया। यह देख विनयंधर कुमार हंसकर बोला, हे सुभगे! इस शरीर पर तो अशुचि रुधिरादिक लेपन करना उचित है जिस से स्वामीके ताप शान्ति हो। शीतल चंदनादिक से कुछ प्रयोजन नहीं, ऐसे विकट वचन कुमार के सुनकर यक्ष प्रकट हुआ और बोला, हे वत्स! यह तुम्हारा पिता है ऐसा अविनय मत करो। फिर राजा से कहा हे राजन्! यह तुम्हारा ही पुत्र है आपने पूर्व भव में बैरानुबंधी कर्म उपार्जन किया उसको छोड़ो। जिसको तुमने द्वेषवश बालकपन में सेवकों से जंगल में छुड़वाया था, यह वही है।

ऐसे यक्ष के अमृत समान वचन सुन राजा अत्यन्त हर्षित हुआ, कुमार ने आकर प्रणाम किया, क्षमा मांगी और कहा हे पिता जी! अविनय से जो दुष्कृत हुआ वह क्षमा कीजिये। उसके पिता नरपति सुभट सहित वज्रसिंह राजा भी उस पुत्र को छाती से लगा कर शिर चुंबन कर अत्यन्त स्नेह से कहने लगा। हे पुत्र! जो मैंने तुम्हारे लिये द्वेष के कारण दुश्चेष्टा की उसको क्षमा करो। इसी अवसर में खबर लगते ही वह माता कमला भी वहां आई। दूर से पुत्र को देखते ही उसके स्तनों से दुग्ध की धारा निकलने लगी। पुत्र से आलिङ्गिन किया, और पुत्रको शिर पर पुचकारा। जैसे नई प्रसूता गौ बछड़ा से प्यार करती है वैसे गोद में प्यार से लेकर

इस प्रकार कहने लगी। हे वत्स ! धन्य है वह माता जिसने तुझको दूध पिलाकर पाला और गोद में खिलाकर इतना बड़ा किया। फिर अपनी आत्मा की निन्दा करती हुई पूर्ण पश्चात्ताप करने लगी।

राजा ने नगर में सूचना भेजकर बड़े मङ्गल वाद्य औ रगान के साथ जन्मोत्सव और पुर प्रवेश कराया। घर पर जाकर आग्रह से पुत्र को राज्यभार दे दिया और कहने लगा हे पुत्र ! मैं अब धर्म करता हुआ दीक्षा लूंगा। धिक्कार हो इस राज्य को, जिसके लोभ से मैंने रत्न समान तुझ प्रिय पुत्र को भयंकर अटवी में अशुचि पदार्थवत् फेकवा दिया। पाप बुद्धि से मैंने यह बड़ा अकार्य किया। इस संसार के पदार्थ अनित्य हैं, मैंने वैराग्य धारण कर जिनमत में आदर किया है। ऐसी पिता की बात सुन कर विनयंधर कुमार बोला हे पिताजी! जिस प्रकार आप मुझको वैराग्य से राज्य देना चाहते हैं वैसे मैं भी संयम में इच्छा करता हूँ। इस प्रकार कुमार ने विचार कर अपना राज्य सार्थवाह को देकर श्री विजयसूरि आचार्य के पास पिता के साथ दीक्षा ले ली। इस राजा के राज्य पर विमल कुमार स्थापन हुआ, उसने पिता को दीक्षा की आज्ञा दी, नगर में बड़ा उत्सव किया।

वे दोनों साधु गुरु की आज्ञा में आदर करते हुए, तपस्या धारण करते, संयम मार्ग में उद्योत करते, गुरु के साथ विहार करते थे। अन्त अवस्था में सयम पालकर अनशन अङ्गीकार कर शुभ ध्यान सहित काल करके दोनों

ही महेन्द्र नामक चौथे देवलोक में देवता उत्पन्न हुए। वहां देवसुख भोग कर देव आयुष्य पूर्ण कर वहां से च्युत हो भरत क्षेत्र में क्षेमपुर नगर में पिता का जीव पूर्णचन्द्र नामक राजा हुआ और उसी नगर में एक सेठ क्षेमंकर नामक धनिक उसके विनयवती नाम की स्त्री थी, उसके गर्भ से पुत्र का जीव पुत्रपने उत्पन्न हुआ। सेठ बहुत प्रसन्न हुआ, पुत्र के शरीर से धूप समान गन्ध प्रकट हुई है जिससे उसके परिवार और नगर के लोगों को बड़ा प्रिय लगता है। पिता ने इसके अनुसार धूपसार नाम दिया। पुरवासी गन्ध के लोभ से अपने वस्त्रों को इसके शरीर पर लगाकर पहिरने लगे।

राजा राज सभा में बैठा हुआ आश्चर्य से लोगों से पूंछता है तुम्हारे वस्त्रों में ऐसा गन्ध कहां से आया? यह गन्ध देवलोक में भी दुर्लभ है। वे नागरिक राजा के वचन सुन कर कहते हैं, हे स्वामी! यह गन्ध सेठ के पुत्र धूपसार के शरीर का है। उसके शरीर के स्पर्श से वस्त्रों में भी यह गन्ध प्रगट हो जाती है। इस बात से प्रसन्न हो राजा रानी भी उसके शरीर से स्पर्श करा कर वस्त्र धारण करते हैं। यह सब श्री जिनराज की धूप पूजा का प्रभाव है।

राजा पूर्वभव के समान इस सेठ कुमार पर अहंकार धारण करता है। राजा ने द्वेषके कारण उस सेठ के पुत्र धूपसार को बुला कर पूछा, हे कुमार! तू कौन से धूप का गन्ध पास रखता है? सत्य कह। कुमार ने

विनय के साथ कहा यह तो मेरे ही देह का स्वाभाविक गन्ध है, अन्य धूप की सुगन्ध नहीं है। ऐसे वचन सुनते ही राजा कुपित हुआ, सेवकों को आज्ञा दी, हे सेवको! इस दुष्ट के शरीर में मल मूत्रादि लगा कर नगर में फेरो जिससे यह सत्य बोले। इस प्रकार राजा के वचन सुन कर सेवकों ने वैसा किया। इधर वे यक्षयक्षिनी के जीव देव भय से च्युत होकर मनुष्य भव में आये थे और वहां जिनधर्म साधन कर पुनः देवलोक में देवता हुए हैं–विमान में बैठ कर उस नगर ऊपर होकर केवली के पास जा रहे हैं। मार्ग में धूपसार के शरीर पर अशुचि लेपन देख कर विमान को ठहराया। अवधि ज्ञान से पहिले का स्नेह जाना, तब उन्होंने उस पर सुगन्धित जल की वर्षा की और पुष्प बरसाये और कहने लगे, हे कुमार! तेरे शरीर पर पहिले से भी अधिक सुगन्ध होओ। ऐसा कह कर देव-देवी आगे चले गये।

अब उस कुमार के शरीर की गन्ध दशों दशाओं में विस्तृत (फैल) हुई। नगर के लोग बड़े आनन्दित हुए। राजा को भी खबर लगी तो उसने भयभीत होकर कुमार को राज सभा में बुलाया और प्रणाम कर कहने लगा–हे सत्पुरुष! मैंने आपके साथ द्वेष के कारण अशुचि विलेपन कराया, उसके लिए क्षमा करो। धूपसार ने कहा–राजन्! इसमें आपका दूषण नहीं, मेरे ही पूर्व जन्म के कर्मों का फल है। जो जीव जैसे कर्म बांधते हैं उन

को बिना भोगे नहीं छूटते हैं। ऐसे सुन्दर वचन सुन कर राजा मन में विचार करता है कि इसके पूर्वभव का सम्बन्ध, पुण्य का फल, केवली भगवान् से जाकर पूंछूंगा।

ऐसा विचार कर राजा अपने परिवार और परिजन को और धूपसार बान्धव को साथ लेकर केवली के पास गया। विधिवत् प्रदक्षिणा देकर वन्दना कर बैठ गया और धर्म सुनने लगा। अवसर पाकर नमस्कार कर केवली भगवान् से पूछने लगा, हे भगवन्! इस धूपसार ने पूर्वभव में कौन सा पुण्य किया है? जिस से इसके शरीर में ऐसी सुगन्धि आती है और मैंने इसके शरीर पर निरपराध अशुचि लेपन क्यों कराया? देवता ने आकर इस पर पुष्प वर्षा क्यों की? यह बात कृपा कर हमको कहिये, इसके सुनने का मुझे बड़ा कौतुक है।

राजा के यह वचन सुन शुद्धमत धारक केवली मुनि अपने केवल ज्ञान से इसके पूर्वभव का वृत्तान्त जान कर कहने लगे—हे राजन्! इस धूपसार ने इस भव से तीसरे भव में श्री जिनराज के अगाड़ी प्रधान धूपदान दिया था उसके पुण्य के प्रभाव से इसके शरीर में सुगन्ध उत्पन्न हुई है और यह देवताओं का पूजनीय हुआ है। धन सम्पत्ति और मनुष्य सुख को भोगने वाला हुआ है। अब यह बहुत से मनुष्य सुख और देवसुख भोग कर धूपदान के भव से सातवें भव में मोक्ष जायगा। यह श्री जिनराज के सामने धूपदान का फल है। यह धूपसार

इस भव से तीसरे भव में पोतनपुर नगर में तुम्हारा पुत्र हुआ था इत्यादि सब बात केवली महाराज ने राजा को सुनाई। फिर उन्हों ने कहा हे राजन्! इसने तुम्हारे साथ युद्ध करते समय सुभटों से कहा था–"अरे सुभटों! इस राजा को क्रोध का ताप है तुम चन्दन क्यों लगाते हो, अशुचि पदार्थ लगाओ" ऐसे वचन मुख से निकाले थे। उसका फल इस भव में तेरे साथ प्रत्यक्ष भोगा।

केवली महाराज के ऐसे वचन सुनते ही राजा को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसने जैसा केवली ने कहा था वैसा सब वृत्तान्त जाना और श्री जिनधर्म में रुचि की और दीक्षा ली। धूपसार को भी धर्म की विशुद्धि प्राप्ति हुई। उसने धन संपदा और परिवार का स्नेह छोड़ कर दीक्षा में आदर किया, जिन भाषित विधि से राजा के साथ दीक्षा ली और सब सिद्धान्त जाने।

फिर धूपसार कुमार ने तप, संयम और नियम में अनुराग रखते हुए शुद्ध रीति से तथा मन, वचन और काय के योग द्वारा दीक्षा का पालन किया। अन्त में आयु के क्षय होने पर अनशन विधि पूर्वक आराधन किया, शुभ ध्यान से मरकर पहले नव ग्रैवेयक लोकमें उत्पन्न हुआ। वहां तेवीस सागरोपमअनशनवृत आयु पालन कर रमणीय देवभोग भागकर मनुष्य योनिमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार मनुष्य के तीन भव और देवताओं के तीन भवोंमें घूम कर दो गति से सातवें भव में पहुँचा, वहां से शाश्वत मुक्ति स्थान को प्राप्त हुआ।

इति श्री पूजाष्टक विषये धूपाधमे विनयंधर कुमार कथानक समाप्तम्।

अथ तृतीय पूजा में अक्षत का महात्म्य कहा जाता है

गाथा = अखंडिय फुडिय चोक्ख वक्खएहि, पूजत्तयं जिणन्दस्स ।
पुरओ नरा कुणन्ता, पावन्ति अखण्डिय सुहाइं ॥ १ ॥

संस्कृतम् = अखण्डिता स्फुटित-चोक्षाक्षतैः, पूजया जिनेन्द्रस्य ।
पुरतो नराः कुर्वन्तः प्राप्नुवन्ति अखण्डित सुखानि ॥ १ ॥

व्याख्या = जो न टूटे हों और न फूटे हों ऐसे चावलों से पूजते हुए जो मनुष्य श्री वीतराग भगवान् के चावलों से स्वस्तक, नन्दावर्तादि आठ मंगल बनाते हैं वे मनुष्य अक्षय सुख पाते हैं । अर्थात् देवता मनुष्यभव सम्बन्धी बड़े विशाल भोग भोगकर अन्त में शुकराज पक्षी के जोड़े समान मुक्त स्थान को प्राप्त होते हैं ।

शुकराज कथा ।

इसी भरत क्षेत्र में सिरपुर नामक नगर है । उसके बाहर उद्यान में श्री ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर है । वह देव विमानवत् अत्यन्त रमणीय था । उसके सामने एक आम का पेड बड़ा मनोहर था, उसकी छाया बहुत गहन थी । उस वृक्ष पर एक शुक पक्षी का जोड़ा रहता था ।

एक दिन शुकराज की स्त्री ने अपने पति से कहा। हे नाथ! शालिक्षेत्र से कच्चे चावलों के सिरे खाने का मुझे दोहद उत्पन्न हुआ है सो कल अवश्य मेरे लिये लावें। ऐसी शुकी के मधुर वचन सुनकर शुकराज बोला। हे प्रिये! यह श्रीकान्त राजा का शालिक्षेत्र है जो इसके कच्चे सिरे लेता है उसको पकड़ कर राजा कष्ट देता है और उसको जीवन से अलग कर देता है। ऐसे पति के वचन सुनकर शुकी बोली हे स्वामी! तुम्हारे जैसे शुकराज किस कामके जो अपनी प्राण प्रिया स्त्री का मरण चाहता हो। ऐसे स्त्री के वचनों से अनादर और लज्जा पाकर अपने जीवन की परवाह न करके उसी राजा के शालिक्षेत्र में गया और कच्चे मनोहर चावलों के सिरे लाकर स्त्री को दिये। स्त्री प्रेम से भक्षण कर अपना मनोरथ पूर्ण करती थी। उधर राजा के रक्षक पुरुष भी खड़े रहते थे तथापि शुकराज चतुराई के बल से प्रतिदिन शालमञ्जरी ला लाकर स्त्री को दिया करता था।

इस प्रकार नित्य भक्षण करते २ कई दिन व्यतीत हो गये, एक दिन वहां स्वयं राजा शालिक्षेत्र देखने को आया और एक ओर से पंखियों से उजाड़े हुए खेत को देखा। आदर के साथ रक्षकों से पूछा, हे पालको! कहो इस क्षेत्र को किसने ऐसा त्रुटित किया! तब क्षेत्रपालक ने हाथ जोड़ विनती की, कि हे महाराज! यहां एक कीर पक्षी आता है, हम लोग बहुत यत्न करते हैं तो भी मंजरी ग्रहण कर लेही जाता है और चतुर चोर के समान जल्दी उड़ जाता है। तब राजा ने कहा यहां पक्षियों का जाल बिछा दो और उस शुक पक्षी को पकड़कर

मेरे पास ले आओ जिससे दुष्ट चोरवत् उसको प्राणान्त दण्ड देऊं। इस तरह कह कर राजा अपने स्थान को चला गया कोई समय शुकराज राजा की आज्ञानुसार लगाये हुए जाल में फँस गया और राजा के पास लाया गया। शुकी भी उसके पीछे आंसू गिराती हुई पति के अति स्नेह से दुःखित हुई दौड़ी २ राजभवन पर पहुंची।

जब राजा सभा में बैठा था तब क्षेत्रपालक ने विनती की–हे महाराज! वह अपराधी शुक चोर की तरह पकड़ा गया और आपके पास लाया हूँ। राजा सुन कर प्रसन्न हुआ और उसके पास से लेकर शुक को मारने लगा। इतनेमें वह शुकी जल्दी से अपने स्वामीके मध्य खड़ी हो बोली–हे नाथ! आप इसे क्यों मारते हैं? पहिले मुझे मारो, इस प्रकार फिर निश्शंक बोली–यह मेरा जीवनदाता पति है, आपके शालिक्षेत्र के चावलों के कच्चे सिरे खाने का मुझको ही दोहद उत्पन्न हुआ था। इसने अपने जीवन की आशा छोडकर मेरा मनोरथ पूर्ण किया है। ऐसे मधुर वचन सुनते ही राजा का कोप शान्त हुआ और प्रसन्न हो उसकी प्रशंसा करने लगा–हे शुकराज! विचक्षण! तू बड़ा खांतिमान् और साहसी है, जो अपने देह की आशा छोड़ कर स्त्री की रक्षा की। यह वचन सुन राजा से शुकी कहने लगी, हे महाराज! यो तो ससार में माता, पिता, पुत्र, धन और सम्पदा का राग है परन्तु स्त्री राग अपने प्राणों से भी प्रिय है। आप भी तो श्रीकान्ता रानी के लिए अपना जीवन देने को उद्यत रहते हैं। इसमें किसी का दोष नहीं अपना स्नेह सबको प्रिय है, इस विचारे शुक का क्या अपराध?

ऐसी गुह्य, युक्ति युक्त शुकी के वचन सुन कर राजा विस्मित हो मन में विचार करने लगा—यह पत्ती गुह्य बात किस तरह जानता है ? ऐसा विचार कर बोला, हे भद्रे ! तू ने मुझे कहीं देखा होगा, तू यह बात किस तरह जानती है ? इस बात को सुनने का मेरे कौतुक है, तू समझा कह। तब शुकी बोली हे महाराज ! सुनो, मैं एक दृष्टान्त कहती हूँ जो बात आपके अन्तःपुर में हुई है उसको प्रकाशित करती हूँ। आपके राज्य में एक तापसी कूट और कपट तथा झूंठ का भण्डार थी। महा रौद्र भयंकर स्वभाव वाली थी। उसका में बहुत मान था ! आपके अन्तःपुरमें स्वेच्छया प्रवेश करती थी। जिसका खंडन कोई नहीं करता था।

आपकी रानी श्रीकान्ता ने एक दिन कहा—हे स्वामिनी ! मैं राजा की रानी हूँ और मेरा स्वामी मेरे पर साधारण प्रेम रखता है, क्योंकि उसके अन्तःपुर में कई वल्लभ भार्याऐं हैं। मैं अपने कर्मवश सुख कम भोगती हूँ। इसलिये हे भगवती ! मेरे पर प्रसन्न होकर ऐसा काम कर, जिससे मेरे पर पति का प्रेम विशेष हो। ऐसा उपाय करो जिससे मेरे मरने पर मरे और जीने पर जीवे। मेरा मनोरथ सिद्ध करो, विशेष क्या कहूँ ? तब वह तापसी रानी के वचनों का अभिप्राय जान कर बोली, हे भद्रे ! यह औषधी का वलय देती हूँ तू अपने हाथों से अपने स्वामी को देना जिससे वह तेरे वशवर्त्ती रहेगा और तेरा मनोरथ सिद्ध होगा। यह बात सुन रानी बोली

हे भगवती ! मैं राजभवन में प्रवेश ही नहीं कर सकती तो यह औषधीवलय किस तरह हाथ में दे सकूंगी ? ऐसे रानी के वचन सुन तापसी, बोली–हे वत्से ! यदि ऐसी बात है तो इस मन्त्र को ग्रहण कर इसके ध्यान से तेरा सौभाग्य खुल जायगा।

ऐसा कह कर अच्छे मुहूर्त्त और अच्छे दिन में उस परिव्राजिका ने रानी को बड़े गुप्त प्रकार से मन्त्र दिया और विधि बतलाई। रानी भी सादर ग्रहण कर उसका ध्यान, पूजा पाठ एकाग्रमन से करने लगी। जैसे २ विधि पूर्वक उसका ध्यान पूजा करती थी, वैसे २ राजा का प्रेम बढ़ने लगा। राजा ने प्रतिहारी को भेजा और कहा, रानी को आदर से राजभवन में लाओ। प्रतिहारी ने आकर रानी से कहा हे स्वामिनी ! तुम्हें राजा का आदेश हुआ है। रानी ने प्रार्थना की–हे भद्र ! राजा ही मेरे भवन में आवे, ऐसा प्रयत्न करो। उसने वैसा ही किया, और कहा आज अवश्य तेरे भवन में राजा आवेगा, तू किसी बात का विकल्प मत करना। यह सुन रानी अच्छा शृङ्गार कर आभूषण धारण कर परिवार सहित बैठी है। राजा बड़े सन्मान के साथ आया और हथिनी पर चढ़ा कर अपने राजभवन में ले गया। बड़े आदर से पटरानी बनाई। अन्य रानियों को दौर्भाग्य दिया। उस राजा के साथ वह श्रीकान्ता रानी वांछित अर्थ सुख भोग भोगने लगी। उसने अपनी इच्छानुसार परिवार, परिजनों को बहुत दान दिया और जिस पर द्वेष था उसको ग्रहण करा कर विपत्ति दी।

इस प्रकार बहुत वर्ष व्यतीत हुए। एक दिन वह तापसी रानीके पास आई और पूछने लगी—हे पुत्री! तेरा मनोरथ सिद्ध हुआ? ऐसा सुनकर रानी ने तापसी का आदर किया और हाथ जोड़कर विनती की, हे भगवती! जो बात संसार में प्राप्त नहीं थी वह आपके चरण कमलकी कृपा से तत्काल होगई, परन्तु मेरा मन अभी डोलायमान हो रहा है, हृदयमें निश्चय नहीं होता है। मैं यह बात प्रत्यक्ष देखना चाहती हूँ कि मेरे जीते राजा जीवे और मरने पर मरे। तब राजा का स्नेह सच्चा जाना जाय, अन्यथा नहीं। यह सुनकर तपस्विनी बोली हे भद्रे! यदि वैसा ही कौतुक देखने की तेरी इच्छा है तो यह जड़ी नासिका के अगाड़ी लगाकर गंध सूंघना, जिससे तू मृततुल्य मूर्च्छित हो जावेगी। राजादिक तुझको प्राण रहित जानेंगे, तब मैं आकर तुझको दूसरी जड़ी सुंघा कर जीवित कर दूंगी। पर देह का रूप नहीं बदलेगा। इस बात का भय मन में मत समझना, इस प्रकार समझा कर वह तापसी अपने स्थान को गई।

पीछेसे रानी ने जड़ी को नासिका से लगाया, और गन्ध ग्रहण किया; इतने में राजाके पास सोती हुई तत्काल प्राण रहित हो गई। राजा उसको चेष्टा रहित देखकर रोने लगा। अन्तःपुर और नगर के लोग इकट्ठे हुए। राज भवन में 'देवी मरी देवी मरी, देवी मरी' ऐसी आवाज होने लगी। राजा की आज्ञा से कई मंत्रवादी

भूतवादी, और विद्यावान् और औषधि, जड़ी के प्रभावज्ञ, मनुष्य आये और कई उपचार कर थक गये, पर शान्ति न हुई और चैतन्य प्राप्त नहीं हुआ।

तब प्रधान मन्त्री ने कहा, यह निश्चेष्ट हो गई अतः अग्नि संस्कार करना चाहिये, जितने उपाय किये वे सब निष्फल हो चुके। ऐसे मन्त्रीश्वर के वचन सुन राजा बोला मुझे भी रानी के साथ जला दो, क्योंकि इस प्राण प्रिया के बिना संसार में जीना व्यर्थ है। ऐसे राजा के वचन सुन मन्त्रीश्वर और नगर के लोग बोले, हे राजन्! यह आपका कार्य अयोग्य है, आपको करना उचित नहीं।

ऐसे प्रजा के वचन सुन राजा फिर बोला–इसका और मेरा मार्ग एक है, दो नहीं। चन्दन काष्ठ मंगालो और चिता बनवाओ। यह कह रानी के साथ श्मशान में गया, वहां कई प्रकारके अशुभ बाजे बाजने लगे। नगर के नरनारी रोने लगे, चारों ओर रोदन ध्वनि से आकाश और पृथ्वी पूर्ण हो गई। प्रेतवन में पहुंचते ही चन्दन काष्ठ से चिता बनाई गई, राजा भी रानी सहित उस पर बैठ गया।

इतने में रोती हुई वह पारिव्राजिका दूर से आई और राजा से कहने लगी, हे देव! यह साहस करना उचित नहीं, यह अलौकिक बात है। यह सुन राजा ने कहा, हे भगवती! यदि ऐसा है तो इस रानी के साथ

मुझे भी प्राण दान दो। यह नहीं जीवेगी तो मेरे भी शरीर का अग्नि संस्कार कर दो। ऐसा राजा का निश्चय जान कर तपस्विनी बोली, हे राजेन्द्र ! यदि ऐसा है तो मैं आपकी प्रिय रानी को अभी जीवित करती हूँ। आप क्षणमात्र ठहरो, कायरपना लाकर उतावल मत करो। इन लोगों के देखते २ प्रत्यक्ष जीवित दान देती हूँ।

ऐसे वचन सुन राजा चिता से उतरा और हृदय में प्रसन्न हुआ, आनन्द से नेत्र विकसित हुए जितनी अपने जीवन की नहीं उतनी अपनी प्राणप्रिया के जीवन की लग रही है। राजा बड़े विनय के साथ बोला, हे भगवती ! मेरे पर कृपा कर मेरी प्रिय रानी को जीवदान दो। यह सुनते ही तपस्विनी ने ज्यों ही सजीवनी जड़ी रानी की नासिका से लगाई, त्यों ही सब नगर के लोगों के देखते २ रानी को चेतना प्राप्त हुई। आलस्य की चेष्टा कर उठी, राजा को यह बात देखकर अपने जीवन की आशा हुई। रानी को जीवित देख आनन्द को प्राप्त हुआ और नेत्रों से हर्ष के आंसू बहने लगे। राजा ऊंची भुजाकर नाचने लगा और कई प्रकार के मंगल बाजे बजवाने लगा।

बड़े महोत्सव के साथ हाथी पर चढ़ाकर अपने नगर में रानी का प्रवेश कराया। तापसी से कहने लगा, हे आर्ये ! ये मेरे अंग के आभूषण आपको अर्पण करता हूँ, फिर आप जो आज्ञा करें वह करने को तैयार हूँ, आपका कथन कभी नहीं लोपूंगा; आपका कार्य सिर से करने को उद्यत हूँ। तब तापसी बोली—हे राजन् ! मुझे हिरण्य रत्न और आभरणादिक से कुछ प्रयोजन नहीं, मैं तो तुम्हारे नगर में भिक्षा पाती हूँ उसी में मेरा

सन्तोष है। राजा ने तपस्विनी पर प्रसन्न हो उसको एक कुटी बनवा दी, स्फटिक मणिमय चारों तरफ भीतें हैं, सोने के खम्भे, रत्न जटित आंगन, ऐसी सुन्दर कुटीदेवविमानवत् प्रकाशमान थी। उसमें रहते २ कितना ही समय व्यतीत हुआ। वह तापसी अन्त में आर्त्तध्यान से मर कर मैं शुकी हुई हूँ। आपको और आपके पास रानी को देखकर मुझको पूर्व तपस्या के कारण जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ है, जिससे आपका मेरा और रानी का पूर्व भव चरित्र स्मरण हो गया।

यह बात श्रीकान्ता रानी ने सुनी तो उठकर विलाप करती शुकी के पास आई और कहने लगी, हे भगवती! तू मर कर पंखिनी कैसे हुई? इस प्रकार जब रानी ने बार२ कहा तब शुकी बोली, हे कृशोदरी! तू कोई बात का दुःख मत कर। इस जन्म में मुझको दुःख है एवं बहुत जीव इससे भी अनन्त गुण कष्ट कर्म वश भोगते हैं। फिर शुकी ने राजा से कहा, हे राजन्! इस दृष्टान्त से जैसे आप अपनी रानी के वश में हैं वैसेही मेरे वश यह पति शुकराज है। जो स्त्री पति से कहती है वह अवश्य करता ही है इसमें संदेह नहीं। यह वचन सुन राजा सन्तुष्ट हुआ और कहा इस सच्चे दृष्टान्त से तुम्हारी अनुमोदना के साथ तुम्हारी आज्ञा पालन करने को प्रसन्न हुआ हूँ। जो इच्छा हो सो मांगो, मैं देता हूँ। ऐसे राजा के वचन सुनकर शुकी बोली, हे राजन्! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो तो मेरे पति को जीवन दान दो इससे अन्य मुझे कोई प्रयोजन नहीं। १

ऐसे शुकी के वचन सुन हँस कर महारानी श्री कान्ता बोली, हे देव ? मेरे वचन से इसके पति को छोड़ दो और प्रतिदिन अन्नदान भी दो। ऐसा सुनकर राजा बोला, हे भद्रे शुकी ! तुम अपने पति के साथ अपने स्थान को जाओ, तुम्हारे वचन से मैंने तुम्हारे पति को छोड़ दिया है। इस प्रकार शुक के जोड़े को भेजकर शालिपालकों को बुलाकर कहा, हे पालको ! इन दोनों पक्षियों को सदा चावल खाने दो। ऐसा वचन सुन दोनों पक्षियों ने कहा हे राजन् ! तथास्तु और ऐसा कह कर आशीस दे अपने स्थान पर आगया। जिस वृक्ष पर रहता था उसी पर रहने लगा।

इस तरह जिस का दोहद पूर्ण हुआ, ऐसी शुकी ने दो अंडे (युगल) दिये। एक दिन वह भोजन के निमित्त बाहर गई, जब पीछे आई तो उसने एक ही अंडा देखा दूसरा नहीं। अपने पुत्र के स्नेह से दुःखित हो नीचे भूमि पर गिर गई और विलाप करने लगी। इतने में वह शुक अंडा लेकर वहां आया। वह जमीन में लोटती हुई शुकी ने सामने जब अंडे को देखा तो मानों अमृतसिक्त के जैसे आनन्दित हुई। सावधान होकर विचारने लगी, जो बंधे हुए पूर्व भव के दारुण कर्मों का विपाक पश्चात्ताप से नष्टकर दिया, वह एक भव के बंधे हुए कर्मों को विचारती है।

उन अंडों के युगल से समय पाकर दो बच्चे शुक और शुकी पैदा हुए। वह भी उन बालकों के साथ कुञ्जों में क्रीड़ा करती थी। कभी २ उस राजा के शालक्षेत्र में बालको को साथ ले जाती और कच्चे चांवलों के सिरों को चोंच से खिलाती, इस तरह क्रीड़ा करते २ बहुत समय व्यतीत हुआ।

एक समय वहां चारण श्रमण ज्ञानी मुनि आये, वहां एक ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर था, उसको बन्दन करने लगे। उनका आगमन सुन नगर के नरनारी और राजा आदि सब उनकी बन्दना करने और श्रीजिनराज के दर्शन करने को वहां आये। मुनिराज ने धर्मोपदेश प्रारंभ किया, अन्त में सब सभाने अक्षत पूजा का महात्म पूछा। वे चारण श्रमण कहने लगे, हे भव्यो! अखण्ड चांवलों से पूजा करते हुए अथवा सामने रखते हुए मनुष्य अखण्ड मुक्ति सुख पाते हैं।

वहां ऐसा महात्म सुनकर राजादिक सर्व नरनारियों ने श्री जिनराज की अक्षत पूजा की। इस तरह उन लोगों को देख कर शुकी अपने पति से कहती है, हे प्रियतम! आप भी अक्षतों से जिनराज की पूजा करो जिससे सिद्ध सुख प्राप्त हो। ऐसा सुनकर शुकराज ने अखंड अक्षत सुन्दर चोंच से ग्रहणकर जिनराज के आगे रख दिये, इस प्रकार दोनों बच्चों से भी माता ने कहा, एवं तीनों ने बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ खेत सेअक्षत लाकर पूजा की, अन्त में चारों ही शुभ ध्यान से मरकर देवलोक में गये। वहां देव संबंधी सुख भोगने लगे।

वहांसे देवायु भोगकर च्युत होकर उस शुकराजका जीव हेमपुर नगर में हेमप्रभ नामक राजा हुआ। उस शुकी का जीव भी देवलोक से च्युत होकर उसी राजा की जयसुन्दरी नामकी रानी हुई। जो अंडे से शुकी हुई थी उसने बहुत संसार में भव किये। अन्त में वह उसी राजा की दूसरी रानी रतिसुन्दरी नाम की हुई, उस राजाके और भी पांचसौ रानियां थीं। स्नेह सबके साथ था परन्तु पटरानी वे दोनों ही थीं, तथा रतिसुन्दरी और जयसुन्दरी राजा के अति वल्लभा थी। उनके साथ पांच प्रकार (शब्द रूप, रस, गन्ध और स्पर्श) का विषय भोग सुख भोगता हुआ राज्य सुख भोगता था।

अब उस राजा के शरीर में कोई समय असह्य ज्वर उत्पन्न हुआ, उससे अत्यन्त ताप पीड़ा भोगता है। उन रानियों ने बावन चंदन घिस २ के लगाया तथापि शान्ति नहीं हुई। पृथ्वी में लोटता रहता है, महा-वेदना से विलाप करता रहता है, अशन पान भी नहीं लेता है। इस प्रकार पीड़ा भोगते २ तीन गुणित सप्ताह अर्थात् इक्कीस दिन व्यतीत हो गये। राजा के पास कई वैद्य, यन्त्रज्ञ,मन्त्रवादी, तन्त्रवित्, चिकित्सक आये और कई उपचार किये, परन्तु किंचिन्मात्र भी लाभ न हुआ। तब निराश हो अपने २ घर गये।

अब जब राजा को कुछ शान्ति न हुई तब बुद्धि निधान मंन्त्री ने नगर में उद्घोषणा कराई, और पटह बजाया। जगह २ सदावर्त शुरू किये, विविध प्रकार दान दिये गये, श्री वीतराग के मन्दिर में भी कई प्रकार की

जापपूजाएं कराई गईं । कहीं कुलदेवी का आराधन प्रारम्भ किया । इस तरह करते २ एक रात्रि के पिछले प्रहर में एक यक्ष प्रत्यक्ष होकर बोला, हे राजन् तू सोता है या जागता है ? ऐसे वचन सुनकर राजा बोला । हे देव ! ऐसे दुःख भोगने वाले को नींद कहां ? यह सुन यक्षराज बोला । हे राजन् मैं तुम्हारे दुःख दूर होने का उपाय बतलाता हूँ । यदि पटरानी अपने शरीर का तेरे पर उतारा करे और अग्नि कुंड में अपना देह होम देवे, तो तुम्हारा जीवन हो और आयु बढ़े, अन्यथा कोई उपाय नहीं । ऐसे वचन कहकर यक्षराज अपने स्थान चलागया।

अब राजा विस्मित होकर विचार करने लगा, क्या यह इन्द्रजाल है अथवा दुःख से मुझको कोई स्वप्न हुआ है ? यह स्वप्न तो नहीं, यह मैंने अभीप्रत्यक्ष में यक्ष देखा है, उसने वचन कहे हैं । इस प्रकार संकल्प करते हुए रात्रि व्यतीत हुई, उदयाचल के शिखर पर सूर्य उदय हुआ । राजा ने सभा में सब रात्रि का वृत्तान्त कह दिया । सब मंत्रियों ने मिलकर राजा से कहा हे स्वामिन् ! यदि एक अपने जीवन के लिये सब परिवार की बलि कर दी जाय तो हानि नहीं, केवल रानी की क्या चिन्ता ? ऐसा सुनकर राजा बोला, जो संसार में सत्यपुरुष होते हैं वे अपने जीवन के लिये दूसरे की जीव हत्या नहीं कराते । ऐसा अकार्य करना सर्वथा अनुचित है। मेरा शरीर रहो या न रहो, ऐसा कार्य नहीं करूंगा ।

बुद्धिमान् मन्त्री ने बुद्धि के उपाय से सब रानियों को बुलाया और रात्रि का यक्ष सम्बन्धी वृत्तान्त कहा। तब सब रानियों ने अपने २ जीवन के लोभ से मन्त्री को कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया, लज्जा से अधोमुख हो कर खड़ी रहीं। इतने में पटरानी रति सुन्दरी का मुख कमल प्रफुल्लित हुआ, पूर्व भव का स्नेह जान कर खड़ी होकर मन्त्री से बोली–हे मन्त्रीश्वर यह मेरा प्राणप्रिय भर्त्ता है यदि इनके जीवन के लिए मेरा शरीर काम आवे तो मेरा बड़ा सौभाग्य है, यदि राजा की आयु बढ़े तो मैंने ससार में सब कुछ पा लिया, अतः इस शरीर का उतारा करो और राजा को बचाओ।

ऐसे पटरानी के वचन सुन मन्त्री ने राजभवन के गवाक्ष के नीचे ही भूमि पर काठ का संचय कराया और अग्नि कुण्ड में ज्वलित अग्नि प्रवेश की। वह रानी प्रसन्न हुई शृङ्गार कर कुलदेवता को नमस्कार कर इस प्रकार वचन कहने लगी–हे देवताओ! आप इस राजा का जीवन बढ़ाओ, मैं अपना देह इसके लिये अग्नि-कुण्ड में होम देती हूँ। ऐसे रानी के वचन सुन राजा दुःखी हुआ बोला–हे प्रिये! तू मेरे लिए अपना देह मत छोड़, मेरे जो पूर्व जन्म के कर्म हैं उनको मैं ही भोगूंगा। अपने अशुभ कर्म बिना भोगे नहीं छूटते हैं।

तब रानी पैरों में प्रणाम कर राजा से आग्रह के साथ कहने लगी–हे प्रियतम! ऐसा मत कहो, आपके लिए मेरा जीवन जावे तो सफल हो जाय, इसलिये मैं अपने शरीर का उतारा निश्चय करूंगी। यह कह कर

राजभवन के गवाक्ष में बैठ गई और नीचे अग्नि-कुण्ड में शरीर डालने को उद्यत हुई। इतने में वह अधिष्टायक यक्षराज प्रत्यक्ष हो कर बोला—मैं तुम्हारे सत्य साहस से प्रसन्न हुआ हूँ, यह कुण्ड शीतल जल से भरा है। मैं तेरे पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ अतः तेरी इच्छा हो सो वस्तु मांग, मैं देने को तैयार हूँ। यक्ष के यह वचन सुन पटरानी बोली—हे यक्षराज! यदि आप मेरा ऊपर प्रसन्न हुए हैं तो मेरे स्वामी यह राजा हेमप्रभ नामक है जिनका प्राणिग्रहण मैंने माता पिता और पंचों की साक्षी से किया है इनका कल्याण हो और रोग उपद्रव शान्त हो और मेरी इच्छा कुछ नहीं है। ऐसे रानी के वचन सुन यक्षराज बोला—हे भद्रे! यह बात सत्य हो परन्तु देव दर्शन वृथा नहीं होते, इसलिये तू फिर इष्ट वस्तु मांग। मैं तेरे पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। यह सुन रानी बोली—हे देव! आपकी पूर्ण कृपा है तो यह राजा चिरञ्जीव हो, इतनी ही याचना करती हूँ। पीछे देवता ने राजा-रानी को दिव्य अलंकार, वस्त्र सहित एक सोने के कमल पर बना हुआ सिंहासन दिया, उस पर उन दोनों को बैठा कर बड़ी महिमा की। जाते समय ऐसी अशीस दी कि तेरा पति चिरकाल जीवित रहे। उसकी प्रशंसा कर उन दोनों पर पुष्पों की वर्षा की और बोला—हे रानी! तू धन्य है जिसने अपना जीवित दान देकर स्वपति को जीवित किया, ऐसा कह कर देवता चला गया।

अब उस रानी ने अपना जीवित दान मूल्य देकर राजा को वश किया, तब राजा प्रसन्न होकर बोला—

हे प्रिये ! तू वर मांग, मैं तुझ को इच्छित देता हूँ । ऐसा सुन रानी ने कहा—हे स्वामिन् ! जब अवसर होगा तब मांग लूंगी, यह वर आप जमा रक्खें । राजा ने भी प्रतिज्ञा कर ली ।

एक समय में वह रति सुन्दरी रानी अपने पुत्र की इच्छा करती हुई कुलदेवी से प्रार्थना करती है—हे कुलदेवते ! आप मुझको पुत्र दीजिये, मैं जय सुन्दरी के पुत्र को बलिदान देऊंगी । एवं मनोरथ करती हुई भवितव्यता के कारण दोनों रानियों के दो पुत्र हुए । वे कुमार शुभ लक्षण सहित और माता पिता को आनन्ददायी हैं । रतिसुन्दरी अपने पुत्र जन्म से अत्यन्त प्रसन्न हुई और चित्त में विचार करने लगी, यह पुत्र कुल देवता ने दिया है । अब जयसुन्दरी के पुत्र को पूजा पूर्वक बलिदान करूंगी । इसका उपाय यह है कि राजा ने वरदान की प्रतिज्ञा की है, वह इस अवसर पर लेना उचित है । सब बात स्वाधीन हो जायगी । ऐसा विचार कर रानी ने अवसर पाकर राजा से कहा—हे महाराज ! आपने पूर्व प्रतिज्ञात वर दिया था वह मुझे दीजिये ।

यह वचन सुन राजा बोला—हे प्रिये ! मैं अधिक क्या कहूँ यदि प्राण मांगे तो भी देने को तैयार हूँ । ऐसा कह कर उसने अपना बड़ा राज्य पांच दिन तक रानी को दे दिया और स्वयं राजा अपने महल में रहने लगा । रानी ने राजा का महाप्रसाद समझ कर राज्य का पालन करने लगी । एकदा रात्रि के पिछले प्रहर में

सुभट भेज कर जयसुन्दरी के पुत्र को मंगवा लिया। पुत्र के वियोग से उधर माता विलाप कर रही है। इधर इस बालक को पहिले स्नान कराया फिर चन्दन, अक्षत, पुष्प से पूजा की। धूप, दीप, नैवेद्य की सामग्री लगा कर होम-क्रिया आरम्भ की। अपने पुत्र के शरीर पर इसको कुल देवी के मन्दिर में ले गये। उद्यान में जहां देवी का मन्दिर था वहां बड़ा उत्सव कराया गया, अनेक बाजे बाजने लगे। यह रानी रतिसुन्दरी भी अपने परिवार सहित कई नर नारियों का नृत्य करती वहां देवी के मन्दिर में जा रही है। नगर के लोग भी वहां महोत्सव में इकट्ठे होगये।

इस अवसर में एक कांचनपुर का स्वामी विद्याधर राजाओं में अग्रेसरी आकाश मार्ग से जा रहा था। उसने बालक को बड़ी कान्ति और तेज युक्त देखा और विचारा कि यह बड़ा पुण्यवान है और सूर्य समान अथवा तपाया हुआ सुवर्णवत् तेजस्वी है। ऐसा विचार अलक्ष्य (गुप्त) रीति से बालक को ले लिया और अपनी रानी के पास जाकर सौंपा और कहा, हे प्रिये! हे कृशोदरी! यह पुत्र तेरे उत्पन्न हुआ है। यह सुन विद्याधर रानी बोली—हे महाराज! आप क्या कहते हैं? मैं तो वन्ध्या हूँ और निर्दय दैव ने मुझको बहुत दुःख दिया है, मेरे भाग्य में पुत्र की उत्पत्ति कहां? पुनः विद्याधर राजा आनन्दित हो हँस कर बोला—हे सुन्दरी! अपने कुल देवता ने यह बालक दिया है सो इसका पालन-पोषण करो। इस प्रकार संशय दूर कर प्रसन्न हुई। रानी ने रत्न राशि

के तेजस्वी बालक को गोद में लेलिया। उस पुत्र के सामने देखने लगी और कहा पहिले कमवश हमारे पुत्र का विरह था अब यह ही हमारा पुत्र दैव ने दिया है। ऐसे कह कर दोनों राजा-रानी अपने नगर में गये।

वहां उसने अपने नगरमें बालक का बड़े ठाठ से जन्मोत्सव किया। वह राजकुमार शुक्ल पत्तके चन्द्रमा की कला के समान बढ़ने लगा, प्रतिदिन अनेक धाइयों से लालन-पालन किया जाता था, सुख से रहता था।

इधर रानी रतिसुन्दरी ने विद्याधर के दिये हुए किसी मृत बालक को लेकर देवी के मन्दिर में जा कर बलिदान दिया और शिला पर पछाड़ा। उसको मरा हुआ जान बड़ी सन्तुष्ट हुई। फिर वहां से अपने भवन में आई और अपना मनोरथ पूर्ण समझा और सुख से रहने लगी। जयसुन्दरी दुःख से दिन विताती थी। उधर विद्याधर राजाके पास वह कुमार बड़ा हो गया उसका नाम मनदकुमार रक्खा है। जब वह यौवना अवस्था को प्राप्त हुआ तब कई विद्याओं को सीखा और विद्या बल से एक विमान बनवाया। विमान में बैठकर एक समय आकाशमार्ग से अनेक पर्वत, नगर, ग्रामों को देखता हुआ अपनी जन्मभूमि में आया। उसी नगर के राजभवन के गवाक्ष से पुत्र वियोग से विलाप करती, शोक समुद्र में डूबी हुई, नेत्रों से पानी की धारा बहाती हुई, अपनी माताको देखा और पास आया। रानी ने भी कुमार को देखा और स्नेह से स्तनों से दुग्ध धारा निकलने लगी।

हर्ष को प्राप्त हो हर्ष के आंसू टपकाने लगी, स्नेह दृष्टि से देखते २ मन सन्तुष्ट नहीं हुआ। कुमार भी पूर्व स्नेह से माता को हरण कर लेगया।

राजा के सुभट, सामन्त आयुधादि लेकर ऊंची भुजा कर इधर उधर दौड़ने लगे। नगर में सब जगह यह कोलाहल हो गया, "देखो राजा की रान को कोई पुरुष हरण कर ले जाता है।" राजा भी बड़ा शूरवीर है परन्तु पदचारी है भूमि पर इस का वश चल सकता है आकाश मार्ग में नहीं। थोडी देर तक तो सब लोग आकाश की तरफ देखते रहे, बाद वह विद्याधर देखते २ अदृश्य हो गया और अपने नगर में चला गया।

वह राजा निराश हो विचार करने लगा, मुझे यह दुःख अग्नि से जले हुए पर खार के समान अति दुस्सह हुआ, एक तो पुत्र का नाश हुआ दूसरे रानी का हरण हुआ। इस प्रकार अत्यन्त दुःखित हो कर अपने नगर में रहने लगा। अपने घरकी मालिक साधारण स्त्री के नहोने से ही बड़ी पीड़ा होती है, जिस में यह राजा की प्रिय रानी।

अब वह चौथा अंडे का जीव देवलोक में अवधिज्ञान से पूर्वभव संबन्ध जान कर विचार करने लगा मेरे भाईने अपनी माता का स्त्री बुद्धि से हरण किया है। तब तत्काल अपने विमान से निकलकर उसको समझाने

के लिये उस विद्याधर नगर के पास पहुंचा । वह राजकुमार अपनी माता को लेकर अपने नगर के बाहर उद्यान में आम की सघन छाया में बैठ गया, मन में आश्चर्य करने लगा । वह देवता भी उसी उद्यान में आम्र वृक्ष की शाखा पर वानर बानरी का रूप बना कर बैठ गया । उनमें से वानर ने बानरी से कहा हे प्रिये ! यह इष्ट दायक तीर्थ है इसलिये इस कुण्डके जल में पड़ने से तिर्यंच भी मनुष्य हो जाता है और मनुष्य तीर्थ के प्रभाव से देव हो जाता है, इसमें संदेह नहीं । इसलिये अपने दोनों भी मनुष्य हो जायंगे, फिर जलमें स्नान कर देवता होजायंगे । जैसे ये दोनों स्त्री पुरुष बैठे हैं वैसे अपने भी पुरुष हो जायगे । यह सुन कर बानरी बोली-हे प्रियतम ! इस पापिष्ठ का नाम कौन लेवे ? जो स्त्री बुद्धि से अपनी माता को हरण करके ले आया है, ऐसे पापी का नाम लेने से तुम भी पाप में सम्मिलित हो जाओगे । जैसे इस मनुष्य का जन्म निरर्थक है वैसे तुम्हारा जन्म भी निरर्थक हो जायगा ।

ऐसे बानरीके वचन सुनकर कुमार और रानी दोनों विचार करने लगे । उनमें से कुमार मनमें कहता है, क्या यह मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ? स्नेहवश प्रसन्न होता हुआ फिर मनमें विचार करता है, इसका मेरा स्नेह अपूर्व है जिस से यह मेरी पूर्व जन्म की माता जानी जाती है । इसका मेरा स्नेह पूर्ण हो गया । रानी भी विचारती है क्या यह मेरा पुत्र है ? मेरे उदर से उत्पन्न हुआ है ? इस प्रकार हृदय में ऊहापोह करने लगी ।

इतने में कुमार ने अपने हृदय का संदेह वानरी से पूछा–हे भद्रे ! क्या यह तुम्हारा वचन सच्चा है ? यह सुन कर वानरी बोली हे, कुमार ! यह मेरे वचन सब सत्य हैं, यदि तुम्हारे मन में सन्देह हो तो इस वन में ही एक केवल ज्ञानी साधु रहते हैं, उनको जाकर पूछ लो। वे तुम्हारे मन का संदेह मिटा देवेंगे। ऐसे वानरी के वचन सुन कर अपनी माता को साथ ले शीघ्र ही ज्ञानी मुनि के पास पहुंचा। इधर वानर वानरी का जोड़ा इनको बात जता कर अदृश्य हो गया।

कुमार और माता ने ज्ञानी मुनिराज को वन्दना कर मनमें विस्मित होकर पूछा–हे स्वामिन्! भगवन्! क्या यह वानर वानरी के कहे हुए वचन सत्य हैं ? तब मुनि ने कहा यह बात सत्य है। इसमें अंश मात्र भी झूंठ नहीं है। परन्तु यह सब समाचार विशेष रीति से तो हेमपुर नगर के पास उद्यान में निश्चल ध्यान में एक साधु बैठा है, उसको केवलज्ञान उपजा है वह कहेगा। ऐसे मुनि के वचन सुनकर वन्दना कर वह विद्याधर अपनी माता को विद्याधर नगर में अपने घर ले गया। एकान्त में माता को छोड़ कर अपनी विद्याधरी माता से पूछा कि हे माता ! तुम यह बात सत्य कहो मेरी माता कौन है और पिता कौन है ? ऐसे पुत्र के वचन सुन कर विचारने लगी यह कुमार मुझे आज ऐसा पूछता है तो इसको अपने वृत्तान्त की कुछ खबर लगी मालूम होती है, ऐसे विचार कर बोली मैं तुम्हारी जननी हूँ यह तुम्हारा पिता है।

अनन्तर कुमार ने फिर माता से पूछा, मैं विशेष कारण जानना चाहता हूँ। तब माता ने वही बात कही। फिर कुमार ने अत्यन्त आग्रह से पूछा, सत्य कहो मेरी जननी और जनक कौन है? तब माता ने कुछ संदेह पूर्वक कहा तब तो कुमार के मन में विशेष संदेह उत्पन्न हुआ। कुमार ने पिताजी को बुला कर पूछा, तब उन्होंने भी यही कहा कि हम ही तुम्हारे माता पिता हैं, इसमें सन्देह मत करो। तब कुमार बोला—हे पिता जी! सुनो मैंने एक नारी स्त्री की बुद्धि से हरण की है, उसकी सब बात यानी बानरी के वचन, ज्ञानी मुनि का पूछना इत्यादि सब बात कही और पिता जी से आज्ञा मांगी कि मैं हेमपुर नगर में जाऊंगा और इस बात का निश्चय केवली से पूछूंगा। ऐसे पुत्र के वचन सुन कर विद्याधर राजा ने आज्ञा दी। तब कुमार ने एक बड़े विमान में विद्याधरी माता पिता और परिवार तथा जन्मदाता माता को बैठा कर हेमपुर की तरफ गमन किया।

वहां उद्यान में केवलज्ञानी के पास जाकर वन्दना कर पृथ्वीतल पर बैठ गये। इसकी माता जयसुन्दरी भी हजारों स्त्रियों के बीच पुत्र साथ बैठी हुई धर्मदेशना सुनती है। इतने में हेमपुर का राजा भी अपने परिवार और नगर के नरनारी सहित वहां आया और वन्दना कर सभा में बैठ गया; धर्म सुनने लगा। अन्त में अवसर जान कर राजा ने गुरु के चरणकमलों में प्रणाम कर पूछा, हे भगवन्! मेरी स्त्री जयसुन्दरी किसने हरी और कहां है? तब केवली कहने लगे, तुम्हारे पुत्र ने जयसुन्दरी का हरण किया है, दूसरे ने नहीं। यह सुन राजा को

बड़ा आश्चर्य हुआ और बोला, हे ज्ञानी! यह बात कैसे हुई? कृपाकर सब कहो। जब रतिसुन्दरी ने तुम्हारे इस पुत्र को देवी के अर्पण करना चाहा तब विद्याधर इसको हरण कर ले गया। वही यौवनावस्था पाकर इधर आया और अपनी माता का उसने हरण किया। राजा ने फिर निवेदन किया हे मुनिराज! इस दुष्ट पुत्र ने मेरे वंशमें कलङ्क लगाया और विरुद्ध कार्य किया। तब मुनीद्र बोले, हे यशस्विन्! सन्देह मत कर, इसने विरुद्ध कार्य नहीं किया है। तब राजा हाथ जोड़ कर फिर बोला, हे ज्ञानसागर! इसका संबन्ध पूरा कहिए, इसके सुनने का मुझे बहुत कौतुक है।

तब केवली गुरु कहने लगे—हे राजन्! जब तुम्हारी रतिसुन्दरी रानी ने पांच दिन का राज्य तुमसे मांगा था और इस पुत्र को द्वेष वश अपने पुत्र की रक्षा के निमित्त मारना चाहा था, कुलदेवी की महोत्सव से पूजा करी थी। उसी समय वैताढ्य पर्वत से विद्याधर राजा इस उद्यान में आया था। पुत्र को गुणवान्, सुन्दर देख स्नेह उत्पन्न हुआ, तब हरण करके अपनी स्त्री विद्याधरी को सौंपा, उसने पालन कर बड़ा किया। जब यह तरुण हुआ तो विमान लेकर आया और अपनी माता को विलाप करती देखी तब स्नेह उपजा और हरण कर अपने नगर में लेगया। जब यह उद्यान में दोनों बैठे तब एक वानरी ने इसको बोध दिया, तब इस कुमारने अपनी असली बात विद्याधरी अपनी माता से पूछी। अब परिवार सहित सन्देह दूर करने को यहां आया है।

यह बात केवली के मुख से निकलते ही कुमार सभा में से उठा और मुनि को प्रणाम किया। अपने माता पिता विद्याधरों को विनय के साथ विमान सौंपा और प्रणाम किया। विद्याधर पिताने भी उससे आलिंगन किया और आंसू गिराता हुआ विलाप करता खड़ा रहा, तब गुरु ने प्रतिबोध दिया। जयसुन्दरी ने अपने पति राजा को सविनय प्रणाम किया और अपना स्नेह का कारण जताया। दुःख से व्याकुल हो केवलीसे हाथ जोड़कर पूछनेलगी—हे भगवन्! पूर्व जन्म के किस कर्म से मेरे पुत्र का वियोग हुआ? यह सोलह वर्ष मुझे अत्यन्त दुःख से बिताने पड़े। तब केवली ने कहा पूर्व भव में तूने सूई के अडे को प्रपंच कर सोलह मुहूर्त्त तक विरह किया था, जिससे इस भव में सोलह वर्ष तक पुत्रवियोग रहा। इस संसार में जीव सुख अथवा दुःख जैसा करता है वैसा ही दूसरे भव में भोगता है। जो अब सुकृत करोगे तो अगाडी भव में शुभ फल पाओगे।

ऐसे गुरु के वचन सुन रानी ने बड़ा पश्चाताप किया, राजा का भी मन दुःखित हुआ। इतने में वह रतिसुन्दरी नामक रानी सभा में खड़ी होकर कुमार और उसकी माता के सामने आकर अपने कुकर्मों की क्षमा मांगने लगी और इस प्रकार लज्जित हो नीचा मुख कर हाथ जोड़ बोली, हे महासती! जो मैंने तुम्हारे साथ दुश्चरित्र किया और दुःख दिया उससे मैंने बड़े दुःखदायी कर्मों का बन्धन किया। इस प्रकार क्षमा मांगती हुई देख कर गुरु बोले तुम दोनों ने ही परस्पर ईर्षा छोड़ कर अपने २ कर्मों की क्षमा मांगी और पश्चात्ताप किया

जिससे तुम्हारे बधे हुए कर्म छूट गये।

राजा ने भी प्रणाम करके केवली से पूछा, हे भगवन् ! मैंने कौन शुभ कर्मों से यह राज्य पाया है, और उत्तम स्त्री सुख प्राप्त हुआ है ? तब गुरु महाराज कहने लगे हे नृपेन्द्र ! शुक भव में श्री जिनराज के अगाडी अक्षत पूजा की थी इससे तू देवलोक में गया, वहां देवागनाओं के साथ अनेक नाटकादि सुख भोगा, अन्त में च्युत होकर यहां आया, तब राज्य सुख प्राप्त हुआ फिर गुरु ने पिछले भव की बात विस्तार से कही और यह भी कहा, हे राजन् ! तुमने पूर्व भव में श्री जिनराज की पूजा विधि पूर्वक की थी जिससे यहां राज्य का सुख और आगे शाश्वत मोक्ष सुख मिलेंगे। यह बात सुन कर राजा ने कहा हे मुनिराज ! मैं अपने पुत्र को राज्य-भार देकर चारित्र ग्रहण करना चाहता हूँ।

इस प्रकार गुरु की आज्ञा लेकर अपनी राजधानी में गया, वहां रतिसुन्दरी के पुत्र को राज्य का काम सौंप दिया और बड़े महोत्सव के साथ दीक्षा ग्रहण की। जयसुन्दरी रानी ने भी दीक्षा ली। इसका पुत्र कुमार ने भी गुरु के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। पिता के साथ विचरता है और साधु के आचार सीखता है। अन्त में राजा अपने स्त्री पुत्र सहित अनशन करके शुभ ध्यान से मर कर सातवें देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहां सुरराज

(इन्द्र) पद प्राप्त किया-दूसरी रानी ने भी दीक्षाली और शुद्ध चरित्र पालन कर उसी देवलोक में पहुंची। वे दोनों माता-पुत्र भी वहां ही गये। इस प्रकार चारों जीव ने वहां से च्युत होकर मनुष्यावतार लिया-अन्त में अक्षत पूजा के प्रभाव से केवल ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति गये।

॥ इति श्री पूजा माहात्मये तृतीयाक्षत पूजा निमित्ते शुकमिथुन कथानकम् तृतीयं समाप्तम् ॥

अथ चतुर्थ पुष्प पूजा विषये कथा माह ।

गाथा = पुज्जइ जो जिण चन्दं, तिन्हिबि संझाओ पवर कुसुमेहिं ॥
सो पावइ वर सोक्खं, कमेण मोक्खं सया सोक्खम् ॥ १ ॥

संस्कृतच्छाया = पूजयति यो जिनचन्द्रं, तिसृष्वपि संध्यासु प्रवर कुसुमैः ॥
स प्राप्नोति वर सौख्यम्(१), क्रमेण मोक्षं सदा सौख्यम् ॥ १ ॥

व्याख्या = जो प्राणी मनुष्यावतार लेकर श्री वीतराग भगवान् को उत्तम विविध ऋतु में उत्पन्न हुए कई प्रकार के पुष्पों से पूजता है वह मनुष्य इस भव में प्रधान धन, भोग, संपदा के सुख और परभव में शाश्वत सुख वाले मोक्ष को पाता है।

(१) सुखमेव सौख्यं स्वार्थेष्यञ् प्रत्ययः ।

गाथा = जह उत्तम कुसुमेहिं, पूयं का उण वीयरागस्स ।
संपत्ता वणियसुया, सुरवर सुक्खं च मोक्खं च ॥२॥

संस्कृतच्छाया = यथोत्तम कुसुमैः पूजां कृत्वा वीतरागस्य ॥
संप्राप्ता वणिक सुता, सुरवर सुखं च मोक्षं च ॥२॥

व्याख्या = जैसे एक व्यवहारिक (वनिये) की लड़की ने श्री वीतराग भगवान् की उत्तम पुष्पों से पूजा करके देवताओं के सुख और मोक्ष सुख को पाया ।

अथ कथा ।

इसी भरतक्षेत्र में एक उत्तर मथुरा नामक नगरी है । वह देश, देशान्तरों में विख्यात है, वहां यशस्वी प्रतापी, प्रतिष्ठित, सूरतेज नामक राजा राज्य करता था । सुख शान्ति से उसकी प्रजा रहती थी, वहां ही सम्यक् दृष्टिमान्, विपुल संपदायुक्त, एक धनदत्त नामक सेठ रहता था । उसकी सुशील, पतिव्रता श्रीमाला नामक भार्या थी । इसकी कुक्षि से एक पुत्री जिनमती नामक उत्पन्न हुई, इसका लघु भाई, प्राणप्रिय, गुणधर नामक था, दोनों बहिन भाई इस सेठ के घर के भूषण थे ।

माता-पिता का प्रेम दोनों पर प्रतिदिन बढ़ता रहता था। अन्यदा पिता ने दक्षिण मथुरा में रहने वाले मकरध्वज सेठ के पुत्र विनयदत्त के साथ अपनी पुत्री का पाणिग्रहण कराया। वह जिनमती बहुत धन आभरण, वस्त्रादि, दास-दासी के साथ अपने सुसराल को गई, कुछ दिनों तक पति के साथ सुख भोगती थी। एक समय जिनमती ने अच्छे पुष्पों की माला मंगाई और भक्ति पूर्वक श्री जिनराजकी पूजा, नित्य करने लगी। इसी अवसर में इसकी लीलावती नामक सौत (सपत्नी) ने ईर्षा से मिथ्यात्व हृदय में धारण करती हुई अपनी दासी से क्रोध के साथ कहा हे प्रिये! इस पुष्प माला को तुम ले जाओ और बाड़ी में जाकर बाहर फेंक दो, मैं इस माला को नहीं देख सकती हूँ इससे मेरे नेत्रों में दाह उत्पन्न होता है। ऐसे सेठानी के वचन सुन दासी ने श्रीजिनराज के ऊपर चढ़ी हुई पुष्प माला को लेने के लिये ज्योंही हाथ डाला त्योंही उसने भयंकर सर्प देखा। भयभीत हुई वहां से दौड़ने लगी, इतने में वह सेठानी कोप से उठकर उस माला को बाहर फेंकने के लिये हाथ डालने लगी, त्योंही मालाधिष्ठायक देवता ने सर्प होकर उसके हाथ को लपेट लिया, और ज़ोर से मरोड़ने लगा। सेठानी उसकी पीड़ा से अत्यन्त दुखी होकर रोने लगी और ऊंचे शब्द से विलाप करने लगी। इसकी आवाज़ सुनकर नगर के लोग इकट्ठे होगये, उन्होंने यह शिक्षा दी कि तुम जिनमती के पास जाओ वह तुम्हारी रक्षा करेगी। ऐसा सुनकर बहुत दुःखित हुई, रानी रोती हुई सब नगरवासी जनों के साथ वहां जिनमती के पास गई।

वह जिनमती बडी सरल स्वभाव और अहंकार रहित है सम्यक्त्व के रस से भरी हुई दया पालती है। निर्मल बुद्धि से सदा परोपकार विचारा करती है। इस अवसर में रोती हुई लीलावती को देखकर कृपा के रस से पूरित उसका शरीर होगया और नवकार मन्त्र स्मरण करने लगी। इसके प्रभाव से उसके हाथ से सर्प को निकाल कर अपने हाथ में पहिन लिया, इसके हाथ सुगन्धित पुष्पमाला हो गई। श्री जिनभाषित धर्म के प्रभाव से और निर्मल शीलव्रत पालन से देवताओं को भी वह जिनमती अत्यन्त प्रिय हुई। वहां इसी अवसर में विचरते हुए युगल मुनियों का आना हुआ और लीलावती सेठानी के द्वार पर खड़े रहे, सखियों ने सेठानी को सूचना दी, वह बाहर आकर बंदना करने लगी। मुनियों ने धर्मलाभ दिया। उनमें से बड़े मुनिराज ने लीलावती से कहा हे भद्रे! तू मेरे हितकारी वचन सुन, मैं तुम्हारे हित की कहता हूँ। तुम तीनों संध्याओं में उत्तम सुगन्धित पुष्पों से श्री जिनराज की पूजा किया करो, जिससे देवताओं के विमान सुख भोग कर अन्त में मोक्ष सुख पाओगी। क्योंकि शास्त्र में कहा है—

जो एक पुष्प से भी भक्ति और श्रद्धा से श्री जिनराज की पूजा करता है वह मनुष्य उत्कृष्ट संपत्ति पाता है और लक्ष्मी का पालक होता है और देवसुख भोगकर मोक्ष पाता है। जो ईर्षा से आशातना, और जिन

पूजा निषेध करता है वह नर हजारों भवों में फिरता है और कई दुःखों से सन्तप्त रहता है इस लोंक में दारिद्र्य दुःख भोगे, और सुख, सौभाग्य रहित होता है। जो जिन पूजा में विघ्न करता है वह दुःख का भंडार होता है।

ऐसे मुनि वचन सुनकर लीलावती पवन से कंपाये हुए कदली वृत्तवत् भयभीत कंपायमान हुई कहने लगी। हे भगवन्! मुझ पापिनी ने बड़ा अपराध किया है, यह कह कर उसने माला का सब वृत्तान्त मुनि से कहा। फिर विनती करने लगी हे मुनिराज! इस पाप की शुद्धि किस तरह होगी? इस पापनी का पाप से छुटकारा कैसे होगा? यह सुन मुनिराज बोले हे भद्रे! जिनपूजा के प्रभाव से, भाव शुद्धि के कारण पाप दूर होता है। ऐसे मुनि के वचन सुन विनय पूर्वक उठकर नमस्कार करके प्रार्थना की, हे भगवन्! आज से मैंने श्री जिनराज की पुष्प पूजा का यावज्जीव अभिग्रह लिया, तीनों संध्याओं में भक्ति के साथ पूजा करूंगी।

इसी प्रकार जिनमती ने भाव शुद्धि से जिन पूजा की प्रतिज्ञा की। एवं मुनि वचन से प्रतिबोध पाई हुई वह लीलावती पश्चात्ताप से तप्त शरीर वाली कई परिजन और पुरलोकों के साथ निर्मल सम्यक्त्व युक्त परम श्राविका हुई। जहां तक धन का नाश न हो, बन्धुवियोग और विविध दुःख न हो तहां तक धर्म में उद्यम करने की प्रतिज्ञा ली, इस प्रकार प्रतिबोध देकर वे मुनिराज उस लीलावती से दान, मान सत्कार, पूजा, पाकर धर्म का उपदेश देकर अन्यत्र विहार कर गये।

अब वह लीलावती तीनों संध्या-काल में उत्तम, सुगन्धित पुष्पों से पूजन करने लगी। प्रतिदिन श्री जिनराज के बिम्ब (मूर्ति) पर अत्यन्त अनुराग बढ़ने लगा।

वह जिनमती माता पिता और भाई से मिलने की उत्कण्ठा करती हुई अपने पति की आज्ञा लेकर उत्तर मथुरा नगरी में पिता के घर पर आई। लक्ष्मी के समान उसका रूप देख कर माता पिता आदि परिवार के लोग उससे मिले और प्रसन्न हुए वह भी प्रति दिन पुष्पों से श्री जिनराज की पूजा करती थी। एक दिन उस के भाई ने इसको पूछा हे बहिन इस पुष्प पूजा का क्या फल है ? मुझको भी बताओ। तब जिनमती बड़े प्रेम से भाई से कहने लगी, हे सहोदर ! इस पुष्प पूजा का माहात्म्य कहां तक कहूँ, जीव को चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव की पदवी तक मिलती है। इस पूजा के प्रभाव से मनुष्य सुख, भोग विलास,धन सम्पत्ति, लक्ष्मी वृद्धि, शरीर की आरोग्यता और कुटुम्ब वृद्धि होती है। परभव में देवताओं के सुख, इन्द्रादिपद प्राप्त होते हैं; अन्त में अक्षय सुख सदन मुक्ति प्राप्त होता है। जो मनुष्य भक्ति सहित जिनपूजा करता है उसके इस लोक के उप- सर्ग, दुष्ट, शत्रु, शान्त हो जाते हैं। हे भाई ! यह फल निश्चय समझो।

इस प्रकार जिनमती का उपदेश सुन कर बांधव बोला, यदि जिन पूजा का फल ऐसा है तो मैं विनय के साथ भक्ति से यावज्जीव त्रिकाल जिन पूजा करूंगा। ऐसा निश्चय जिनमती के सामने किया। तब बहिन

बोली, हे भाई! तू धन्य है; जिसके ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई है। शास्त्र में कहा है जो प्राणी अल्प मति और हीन पुण्य होता है उसको जिनपूजा की मति नहीं होती है।

इस प्रकार वे दोनों भाई बहिन श्री जिनराज के चरण कमल की शुश्रूषा और शुभ कार्य करते २ समय बिताते थे, अपने नियम के पालने में पूर्ण तत्पर रहते थे। अन्त में शुभ परिणाम से मरण पाकर दोनों ही सौधर्म देवलोक में देवता उत्पन्न हुए। वहां श्री जिनराज की पूजा के प्रभाव से प्रधान देव सुख भोगने लगे।

यहां एक पद्मपुर नामक नगर है उसका राजा प्रतापी, तेजस्वी और पराक्रमी पद्मरथ नामक था, वह सुख शान्ति से राज पालता था। उसके एक पद्मा नाम की पटरानी है उसकी कुक्षि में देवलोक से च्युत होकर गुणधर का जीव पुत्रपने उत्पन्न हुआ। बड़े उत्सव के साथ उसका नाम जयकुमार दिया। वह कुमार कई धाइयों से लालन पालन किया जाता हुआ पांच वर्ष का हुआ। अनन्तर गुरु के पास सकल कला और आगम सिखाये गये। वह सर्व विद्या में निपुण होकर यौवनावस्था को प्राप्त हुआ। शरीर की कान्ति और स्वाभाविक गुणों से साक्षात् देवकुमारवत् ज्ञात होता है।

इन्हीं दिनों सुरपुर नामक नगर में सूरविक्रम नामक राजा राज्य करता था, उसकी स्त्री राजवल्लभ,

लक्ष्मी के जैसे रूपवती श्रीमाला नामकी थी। इसकी कुक्षि में जिनमती का जीव देवलोक से च्युत होकर कन्या पने उत्पन्न हुआ। माता-पिता ने सब कुटुम्ब की निमन्त्रणा कर विनयगुण सहित, सरोवर में राजहंसी के जैसे रमण करने वाली उस कन्या का नाम विनयश्री स्थापन किया। पुत्री के गुण लक्ष्मी और पार्वती के समान सर्वत्र प्रसिद्ध होने लगे। रूप और लावण्य से बड़े २ योगियों के मन को चलायमान करती थी, तो नगर के लोग उस को देखकर मोहित होवें इसमें कुछ विशेषता नहीं।

अब वह कन्या माता-पिता को अत्यन्त प्रिय होती हुई यौवनावस्था को प्राप्त हुई, माता ने उसे विवाह योग्य जाना और शृङ्गार कराकर राजसभा में राजा के पास भेजी, वह राजकुमारी मनुष्यों का मनहरण करती हुई आस्थान मण्डप में राजा की गोद में जाकर बैठ गई, राजा ने प्यारकर मस्तक चुंबन किया और वह इसकी यौवन अवस्था देख कर चिन्ता समुद्र में डूब गया। अन्त में धैर्य धारण कर विचार करने लगा यह कन्यारत्न किसको देऊं। मुझे तो इसके योग्य गुणी वर पृथ्वी मण्डल में नहीं दीखता है।

इस प्रकार उदास पिता को देख कर राजपुत्री बोली–हे पिताजी! आप चिन्ता न करें। भूमण्डल के समस्त राजकुमारों को निमन्त्रण करिये, मैं अपने चित्त के अनुसार उनमें से पति ग्रहण कर लूंगी। यह सुन राजा ने कहा, हे वत्से! जैसा तेरा मनोरथ है वैसा ही कार्य कराया जावेगा, इतना कह पुत्री को माता के पास भेज दिया।

अनन्तर राजा ने मुहूर्त्त दिखा कर देश देशान्तरों के राजकुमारों को बुलावा भेजा। मनोहर, विशाल स्वयंबर मण्डप बनवाया, और वहां भिन्न २ नामांकित सिंहासन स्थापन करवा दिये। राजकुमार आ आकर उन पर विराजमान हुए। राजकुमारी भी शृङ्गार कर स्वयंबर मण्डप में आई, सखियों का परिवार और प्रतिहारी (परिचय कराने वाली) साथ थी। सब कुमारों पर इसकी दृष्टि पड़ी परन्तु कोई भी इसको रुचा नहीं। प्रतिहारी जिस २ राजकुमार के गुण और देश समृद्धि का वर्णन करती है, उसमें दोष निकालती, विरक्त होकर अगाड़ी चल देती, परन्तु किसी कुमार को अङ्गीकार नहीं किया।

राजा ने कुमारी का चित्त विरक्त जान कर सब राजकुमारों का चित्रपट (तस्वीर वाला कपड़ा) तैयार करा कर राजकुमारी को दिखाते २ अभिप्राय लिया, परन्तु उसने अपनी दृष्टि फेर ली। उसका मन किसी भी राजकुमार पर अनुरक्त नहीं हुआ। शास्त्र में कहा है—जिस प्राणी के साथ पूर्वभव स्नेह हो वह उस पर ही अपना स्नेह बढ़ाता है अन्य पर नहीं।

राजा अतीव चिन्तातुर हो चित्त में संताप रखता हुआ विचार करता है कि क्या इस स्वयम्बर मंडप में कुमारी के लिए वर विधाता ने पैदा ही नहीं किया? इतने में राजा ने जयकुमार का रूप चित्र में लिखवा कर

कुमारी को दिखाया, देखते ही बड़ी हर्षित हुई, स्नेह दृष्टि से बार २ देखने लगी। राजा उस कुमारी का अनुराग देख कर प्रसन्न हुआ और विचार करने लगा, हंसनी का प्रेम हंस पर ही होता है परन्तु हंस को छोड़ कर कौए पर प्रेम नहीं रखती। इस प्रकार योग्यता जान कर अपने मन्त्रियों को बुलाया और पद्मपुर में पद्मरथ राजा के पास उनको भेजा।

मन्त्री लोग भी शीघ्र ही पद्मपुर पहुंचे और पद्मराजा को प्रणाम कर कहने लगे, हे महाराज! हम सुरपुर नगर के स्वामी की ओर से भेजे हुए आपके पास आये हैं। सूरविक्रम राजा ने यह समाचार हमारे साथ कहलाये हैं कि मेरी सर्वांग सुन्दरी, गुणवती विनयश्री नामक पुत्री है वह आपके पुत्र जयकुमार को दी है। ऐसे वचन सुनकर राजा सन्तुष्ट होकर बोला हे मन्त्रियो! ऐसा कौन संसार में होगा जो आई हुई लक्ष्मी को निषेध करे? यह राजकुमारी लक्ष्मी समान है इसका लाभ हमारे अत्यन्त शुभदायक है। जयकुमार पिता के वचन सुन पूर्वस्नेह से सन्तुष्ट हुआ, बाद उस राजा ने मन्त्रियों का सन्मान कर विदा किया। वे भी विवाह का दिन कहकर अपने नगर में आगये और अपने स्वामी को सब वृत्तान्त कह दिया।

पद्मरथ राजा ने अच्छा मुहूर्त्त देख कर शुभ दिन में जयकुमार को विवाह निमित्त भेजा वह भी बड़े

ठाट से सुरपुर में आया। तब श्री सूरविक्रम राजा ने बड़ा भारी उत्सव करके वधाई दी और सन्मान के साथ पुरप्रवेश कराया।

जयकुमार उत्कृष्ट विवाह मुहूर्त्त में मङ्गल बाजों के वजने पर विवाह मण्डप में गया और उसने कुमारी का पाणिग्रहण किया, विवाह कार्य होने के पीछे हथलेवा छोड़ा उस समय राजा ने हाथी, घोड़ा, रथ, दास दासी, वस्त्र, भूषण, और मणि माणिक्यादि, सोना, चांदी, तेल, फुलेल, आदि उत्तम वस्तुऐं दी, और रहने को एक आवास करवा दिया—उसमें रह कर आनन्द से वह जयकुमार विनयश्री के साथ पांच प्रकार के विषय सुख भोगने लगा। वहां रहते वहुत दिन वीत गये।

कुछ समय बाद राजा ने महोत्सव के साथ उसको अपने घर विदा किया। वह जयकुमार अपनी स्त्री के साथ चला। चलते २ एक बन में पहुंचा; वहां कई साधुओं के परिवार सहित एक आचार्य को देखा। वे साधुगणस्वामी आचार्य श्वेत वस्त्र धारण करने हैं और निर्मल चार ज्ञान के धारक हैं जिनके दांतों की क्रान्ति धवली है, नाम भी उनका निर्मल ही है।

ऐसे आचार्य को बन में देखकर विनयश्री ने अपने पति से कहा, हे स्वामिन्! यह बड़े ज्ञानी मुनि

मालूम होते हैं अपने भी इनको भक्ति और विनय के साथ वन्दना करें ऐसे वचन सुनकर विजयी जयकुमार ने अपने सेनादिक परिवार के साथ मुनिराज को वन्दना की। मुनिराज ने धर्मलाभ दिया, तदनन्तर संसार सागर से तारिणी धर्मदेशना दी। फिर मुनि ने जयकुमार और विनयश्री से नाम लेकर कहा तुम्हारा आना ठीक हुआ तुमको धर्म की प्राप्ति हो।

इस प्रकार मुनिनायक के वचन सुनकर अपने हृदय में विस्मित हुई विनयश्री इस तरह विचार करने लगी। दोनों ही के हृदय में आश्चर्य हुआ, यह मुनि हमारे नाम कैसे जानते हैं? फिर धीरज धारण किया कि जो ज्ञानी होते हैं उनका क्या आश्चर्य? उनसे कोई बात छिपी नहीं है। दोनों ही के मन में पूर्वभव की बात सुनने का कौतूहल उत्पन्न हुआ। श्री वीतराग का धर्म दोनों ही ने सुना इतने में मुनिवर को प्रणाम कर जयकुमार ने पूछा, हे भगवन्? मैंने कौनसा पुण्य पूर्वभव में उपार्जन किया जिससे मैंने निर्मल मनोवांछित सुख राज्य कलत्रादि सुख पाया। आप कृपाकर मेरे पूर्व भव का सम्बन्ध कहिये।

ऐसा सुन ध्यानी और ज्ञानी आचार्य ने कुमार के पूर्वभव का वृत्तान्त कहना प्रारंभ किया। हे महायशस्वी! राजकुमार! तुम पूर्व भव में एक व्यवहारी के पुत्र थे यह जिनमती तुम्हारी बड़ी बहिन थी, तुमने एक

बार त्रिकाल संध्या पूजा करती देखकर इसको पूछा, इसने पूजा का माहात्म्य बताया। तुमको पूर्ण श्रद्धा हुई, और तुमने भी श्री जिनराज की पूजा त्रिकाल करना प्रारम्भ कर दिया। उस जिन पूजा के प्रभाव से तुम दोनों ही समाधि मरण प्राप्त हो देवलोक में उत्पन्न हुए। वहां देव सम्बन्धी बहुत से सुख भोग कर वहां से च्युत हो ऐसा बड़ा राज्य और ऋद्धि पाई है। फिर अगाड़ी भी देव-नरके सुख पाओगे। तुम कृतपुण्य हो, जन्मांतर में तुमने श्रीवीतराग की भक्ति की है इससे अन्त में अविचल मुक्ति सुख भी पाओगे।

यह दोनों ज्ञानी के मुख से जिन पूजा का प्रभाव और पूर्वभव का सम्बन्ध सुन कर हर्षित हुए। कुमार ने विनय कर प्रार्थना की-हे भगवन्! मेरी बड़ी बहिन अब कहां है? जिसके साथ मैंने पूजा फल उपार्जन किया था।

मुनिपति कहने लगे "हे कुमार! वह भी सौधर्मेन्द्र देवलोक के सुख भोग कर इस भव कर्म प्रभाव से तुम्हारी गृहिणी हुई है।"

ऐसे आचार्य के मुख से अपना विरुद्ध चरित्र सुन राजकुमार और विनय श्री को मुनि के प्रभाव से जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, उससे उन दोनों ने अपने पूर्व भव का सम्बन्ध याद किया। जैसे गुरु ने दर्शाया

था। दोनों ही सावधान होकर हाथ जोड़ कर आश्चर्य से कहने लगे, हे भगवन् ! जैसा वचन आपने कहा वह सत्य है, हमने भी पूर्वभव का सम्बन्ध जाति स्मरण ज्ञान से जान लिया।

अब लज्जित हुई विनय श्री कहने लगी, हे स्वामिन् मैं कहां जाऊं और क्या करूं ? जो मेरे पूर्व भव का भाई था वह अब भर्त्ता हुआ। इसलिये मेरे जन्म को धिक्कार है और इस राज्य लक्ष्मी को भी धिक्कार है, जिससे मैंने लोक विरुद्ध, निन्दित कार्य किया। इस तरह पश्चात्ताप करती विनयश्री को मुनिपति ने कहा, हे भद्रे ! तुम मनमें दुःख मत करो, क्योंकि संसार में जीव कभी भर्त्ता होवे, कभी स्त्री, कभी पुत्र, कभी पिता, एवं कर्म की महाविषम अवस्था है इससे मनमें खेद मत करो। इस प्रकार गुरु वचन सुन विनयश्री बोली हे मुनि-वर ! आपने कहा सो सत्य है, जो अज्ञान रीति से करे तो दोष नहीं परन्तु जो आत्मा का हित चाहे वह जान बूझ कर करे तो संसार में अत्यन्त दुःख पावे।

इसलिये मैं इस पूर्वभव के भाई के साथ संसार के सुख भोगना नहीं चाहती हूँ, अब मैं यावज्जीवन ब्रह्मव्रत का निश्चय करती हूँ, अर्थात् जीवन पर्यन्त अखण्ड शीलव्रत धारण करूंगी। इसलिये हे भगवन् ! मुझे दीक्षा दीजिये, जिससे संसार के दुःखों को छोड़ कर संसार की कल्पना छोडूंगी।

ऐसे विनयश्री के वचन सुन कर आचार्य बोले हे भद्रे ! तुझको धर्मकार्य करना उचित है तभी तेरा

ज्ञान सफल है अन्यथा नहीं। ऐसा वैराग्य युक्त उपदेश, अमृतधारावत् सुखकारी, गुरुवचन सुन जयकुमार भी इस प्रकार कहने लगा हे भगवन्! धिक्कार है इस संसार को जो मेरी पूर्व भव की बड़ी बहिन मर कर स्त्री हुई। इस बात से मैं भी विरक्त हुआ हूँ, परन्तु दीक्षा पालन करने की मेरी शक्ति नहीं है, इसलिये मैं क्या करूं? हे स्वामिन्! मुझको भी उचित धर्म का उपदेश दो। तब गुरु बोले हे भद्र! तुम श्री वीतराग की दीक्षा पालने को असमर्थ हो तो श्रावकव्रत अंगीकार करो। विनय श्री ने गुरु के पास विधान पूर्वक दीक्षा ली और विषय सुख से निरपेक्ष होगई। जयकुमार ने गुरु के पास विधिपूर्वक श्रावकधर्म का आदर किया। वह कुमार विनयश्री को क्षमा पूर्वक नमस्कार कर, श्री गुरु के चरण कमलको वन्दना कर अपने नगर में चला गया। वहां श्री जिनभाषित धर्म को ग्रहण कर पालन करने लगा।

अब वह विनयश्री साध्वी सुव्रता नामक साध्वी के पास आचार-विचार सीखने लगी और शुद्ध दीक्षा पालने लगी।

अन्त में ध्यान, तप और समाधि के योग से केवल ज्ञान को प्राप्त हुई, फिर भूमण्डल में विचरती हुई गांव२ नगर२ में बहुत से भव्य जीवो को प्रति बोध देती हुई केवल ज्ञान की महिमा फैलाने लगी। अन्त में शुभ अध्यवसाय से आयु का क्षय कर मरण प्राप्त हो वह महासती मुक्ति के अखंडित शाश्वत सुखको प्राप्त हुई।

इतिश्री जिनेन्द्र पूजाष्टके परिमल बहुलकुसुममाला पूजायां वणिकसुता जिनमती व्याख्यानकं चतुर्थ कथानकं सम्पूर्णम्।

अधुना पञ्चम पूजा प्रदीपमाहात्म्यमाह ।

गाथा = जिण भवणंमि पईवो, दिन्नो भावेण लहइ कल्लाणं ।
जह जिणमइ पइपत्तं, धणसिरि-सहियाइं देवत्तं ॥१॥

संस्कृतच्छाया = जिनभवने प्रदीपः, दत्तो भावेन लभते कल्याणं ।
यथा जिनमतिः प्राप्ति प्राप्ता, धन श्री सहितं देवत्वम् ॥

व्याख्या = जो मनुष्य श्री जिनराज के मन्दिर में भक्ति से दीपक पूजा करता है वह निर्मल ज्ञान, सम्पत्ति लक्ष्मी और देवतापन जिनमती के जैसे पाता है और उसको भव २ में मंगल की वृद्धि, देवसुख और मनुष्य सुख भी प्राप्त होते हैं ।

अत्र कथा ।

इसी भरतक्षेत्र में शोभायुक्त, पृथ्वी मण्डल में प्रसिद्ध मेघपुर नामक नगर है, वहां अनेक प्रकार महल, मालिया, गवाक्ष आदि होने से स्वर्ग के सदृश्य ज्ञात होता है । उस नगर में नरनाथ मेघ नामक

राजा राज्य करता है। राजा सर्व जगत् में प्रसिद्ध, प्रतापी और यशस्वी था, उसके बैरी गज समान थे और वह सिंह समान था।

उसी नगर में एक गुणवान, श्री वीतराग चरण कमल सेवक, सम्यकदृष्टि, वरदत्तनामक सेठ रहता था। उसके घर में शीलभूषण, जिनधर्मरक्त, निर्मल गुणगणालंकृत, शीलवती नामक भार्या थी, उसकी कुक्षि से सम्यक्तधारक, गुणवती, जिनमती नामक कन्या उत्पन्न हुई। वहां ही एक धनश्री नामक व्यवहारी की पुत्री है उसके साथ इस जिनमती का स्नेह और सखी भाव है, वह सम्यक्त को धारण करती थी, बुद्धि में तेज थी इन दोनों के आपस में प्रेम बहुत था। एक के सुखी होने से दूसरी सुखी रहती और दुःखी होने से दुःखित होती। इनका रूप, गुण, सौभाग्य, अवस्था भी सदृश थी।

इस प्रकार उन दोनों की प्रीतिलता परस्पर बढ़ती थी, एक दिन वह जिनमती श्री वीतराग के मन्दिर में श्री जिन पूजा करके सायंकाल को दीपक पूजा करती थी। यह देख धनश्री बोली हे प्रिय सखी! इस दीप पूजा का क्या फल है? मैं भी त्रिकाल दीप पूजा करूं? ऐसे उसके बचन सुन जिनमती बोली, हे भद्रे! श्री प्रभु की भक्ति से जो विधि सहित दीप पूजा करता है वह मनुष्य सुख और देवसुख पाकर अनुक्रम से मुक्ति का सुख भी पाता है और दीप पूजा से अपनी देह में निर्मल बुद्धि उत्पन्न होवे। जो अखण्ड मन परिणाम से

श्री वीतराग के आगे विधि पूर्वक दीपदान करता है, वह जीव बहुप्रकार रत्न, मणि, माणिक्यादि पावे, जो परम भक्ति से दीपदान करे तो वह अपने भव २ के पापरूप पतंगों को दीपकवत् जला देवे, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। यह सुन धनश्री ने दीपक पूजा का प्रारंभ किया और श्री जिनराज की भक्ति में निश्चल होगई।

वह प्रतिदिन श्री जिनराज के अगाड़ी मंडल की रचना कर दीप स्थापन प्रतिदिन करती थी, और जिनधर्म में दृढ़ रहती थी। इस प्रकार वे दोनों सखियां प्रतिदिन दीपदान त्रिसंध्याओं में करती अत्यन्त भक्ति राग से परिपूर्ण हो गईं। दोनों एक चित्त हुई जिनधर्म का पालन करती थीं।

एक दिन धनश्री ने अपने आयु का अन्त किसी प्रकार जान लिया। जिनमती के वचन से अनशन-व्रत ग्रहण कर लिया, विधि पूर्वक अनशन पालन कर निर्मल लेश्या से पंच परमेष्टि महामन्त्र नमस्कार का स्मरण किया। अन्त में मर कर सौधर्म देवलोक में देवी उत्पन्न हुई, वहां देव सुख भोगने लगी। इसके विरह दुःख से संतप्त जिनमती श्री जिनराज की दीपा पूजा में विशेष उद्यम करने लगी। एक दिन वह भी आयु के अन्त में विधिवत् अनशन ले मर कर उसी सौधर्म देवलोक में जहां देवीधनश्री का विमान था, वहां ही देवी उत्पन्न हुई, बड़ी ऋद्धि, परिवार, दिव्यसुख प्राप्त हुई॥ इस देवी ने अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव का स्नेह देखा और दोनों देवियां मिलीं और पूर्ण स्नेह से रहने लगीं। एकदा वे दोनों देवियों ने अपने ऋद्धि का समुदाय देखकर

विस्मित हुईं, उन्होंने विचार किया कि अपन दोनों ने कौन से सुकृत से ऐसी अनुपम ऋद्धि पाई? उपयोग देकर अवधिज्ञान से जाना कि पूर्वभव में श्री जिनराज के सामने दीपदान किया था उसका यह फल मिला है। और यहां इच्छित देवसुख भोगती हैं। इस तरह विचार कर यहां पृथ्वी पर मेघपुर नगर के पास श्री ऋषभदेव स्वामी का प्रधान, रमणीय मन्दिर था, वहां आईं और आकर हृदय में प्रसन्न हुईं और उस मन्दिर की उन्होंने अद्भुत रचना की, उसको नीचे दिखाते हैं।

मन्दिर रचना वर्णन।

स्फटिक रत्न के पत्थर की शिलाएं बाहर भीतर लगी हैं, स्वर्णमय स्तंभ, जिनमें मणि और रत्न जड़े हैं। ऊपर नवीन सुवर्णमय ध्वजाओं से शोभायमान था, अग्नि में तपाये हुए कनकमय दण्ड उनमें लगे थे। ध्वजाओं के ऊपर पुष्प मालाएं विराजमान थीं, कलशों के ऊपर रमणीय रत्न प्रदीप देदीप्यमान थे, जिन भवन ऊपर सुगन्धित पंचवर्ण पुष्पों की वर्षा और सुवासित जलवृष्टि होती थी। जिससे उसकी महिमा अवर्णनीय थी। उन दोनों देवियोंने श्री ऋषभदेव स्वामी के मंदिर के चारों तरफ तीन प्रदक्षिणा दीनी, भीतर वन्दन कर स्तुति करना प्रारंभ किया। फिर वार २ श्री जिनराज को प्रणामकर भक्ति से हृदय में हर्ष धारण करने लगीं। अन्त में बहुत महिमा कर अपने देवलोक में गईं। वहां रहती हुईं वे दोनों देव सुख यथेच्छ भोगती हैं।

अब वह धनश्री अपने देव आयु को पूरा कर च्युत होकर मेघपुर नगर में राजा मकरध्वज राज्य करता था उसके पटरानी कनकमाला नामकी हुई, वह पृथ्वीभर की स्त्रियों में तिलक समान रूपवती थी दूसरी स्त्री कोई उसके समान नहीं थी। राजा के वह रानी अपने प्राण से भी प्रिय थी। इस राजा के एक रानी दमितारी नामकी थी परन्तु वह रोग से पीडित हो परभव के दोष से मरकर राक्षसी हुई।

यह राजा कनकमाला के साथ विषय सुख भोगता था, दौगुन्दक देवता के जैसे रात्रि दिन जाते हुए मालूम नहीं होते थे। जहां रानी का वासघर था वहां रात्रि के समय भी सूर्य समान प्रकाश रहता था, क्योंकि रानी के शरीर की कान्ति देदीप्यमान रहती थी।

एकदा रानी के साथ विषयसुख में आसक्त राजा को देखकर वह राक्षसी कुपित हुई अर्धरात्रि के समय रानी के वासगृह में प्रवेश करने लगी परन्तु सूर्य समान रानी के तेज से मन्द होती हुई, क्रुद्ध होकर राजा के पास आई, राजा ने बड़ी डाढ़ें, दांत वाली भयानक मुखी, विकराल नेत्रा, उस राक्षसी को देखो। देखते ही उसने वैक्रिय रूप से सर्प का रूप बनाया और राजा के ऊपर उपद्रव करने को उद्यत हुआ, परन्तु रानी के तेज से निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर पड़ गया। उस सर्प का बल नहीं चला। अपनी आंखें मींचलीं, शरीर संकुचित

कर लिया। फिर बार २ क्रोधरूप अग्नि से जलता हुआ उठा और भयानक शब्द करने लगा। उसकी शक्ति मन्द हो गई। यह कठिन उपसर्ग राजा--रानी को हुआ तो भी वे दोनों चित्त में क्षोभ को धारण नहीं करने लगे और उठकर देखें तो रानी के तेज के सामने क्षुब्द चित्त हुआ पड़ा है। इस अवसर में उस राक्षसी ने क्रोध कर अनेक उपद्रव किये परन्तु कनकमाला सत्य से चलायमान नहीं हुई।

उसके बाद रानी का साहस देख सन्तुष्ट हुई राक्षसी ने अपना मूलरूप धारण किया और बोली "हे वत्स! मैं तेरे पर प्रसन्न हुई हूँ, तू इष्ट वरदान मांग, मैं देती हूँ" ऐसे राक्षसी के वचन सुन रानी कनकमाला बोली हे भगवती! यदि तू मेरे ऊपर प्रसन्न हुई है तो एक धर्म कार्य कर, रत्नजटित स्वर्णमय श्री वीतराग का मन्दिर बना। यह वचन अंगीकार कर भय प्राप्त राक्षसी अपने स्थान गई।

जब रात्रि व्यतीत हुई, दुष्कर समय भी व्यतीत हुआ, प्रातः काल राजा रानी सुख शय्या में जाग गये, अपने महल झरोके से देखा तो क्षण भर में रात्रि के समय देवमन्दिर समान उस राक्षसी ने एक स्वर्णमय जिनप्रासाद बनाया है नगर के लोग उठे और देख कर कहने लगे कि यह भवन कनकमाला रानी ने अपने पूजा के लिए बनवाया है। ठीक राजभवन के झरोखे के सामने श्री वीतराग भगवान् की प्रतिमा है सो बैठी हुई प्रति दिन दर्शन करती है। रात्रि होते ही अपने रतिविलास में लग जाती है, इस प्रकार करते२ उसका समय व्यतीत होता था।

इस अवसर में देवलोक से वह जिनमती देवी कनकमाला रानी को प्रतिबोध देने के लिये आई और रात्रि के पिछले प्रहर में उससे कहा, हे कृशोदरी ! तू क्या क्रीड़ा करती है ? देख पूर्वभव में श्री ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर बनवाया और दीपक पूजा करी थी उसका यह फल है। इस प्रकार प्रति दिन आकर प्रतिबोध देती थी रानी ने यह बात सुनी और आश्चर्य्य प्राप्त होकर विचार करने लगी, यह कौन है ? जो मुझे प्रति दिन आ २ कर उपदेश देवे है ? जब कोई अतिशय ज्ञानी मुनिराज आवेंगे तब इसका कारण अवश्य पूछूंगी। इतने में तो एक ज्ञानी मुनिवर बहुत साधु परिवार सहित आये, उनका नाम श्री गुणधर आचार्य था। बड़ी अतिशयवती ज्ञान की ऋद्धि को धारण करते थे। उस नगर के पास उद्यान में आकर निवास किया। यह समाचार जब कनकमाला को श्रवणगोचर हुए तब राजा को साथ ले बड़े महोत्सव से परिवार के साथ गुरु को वन्दना करने गई, विधिवत् वन्दना करी वहां मुनिराज ने धर्मोपदेशना दी, अन्त में हाथ जोड़ कर रानी ने सदेह पूछा, हे भगवन् ! प्रति दिन प्रातः अर्थात् रात्रि के पिछले प्रहर में आकर कोई कहता है कि तू क्या क्रीड़ा करती है ? इस बात को सुनने का मुझे अत्यन्त कौतुक है सो कृपा कर कहो।

यह सुन गुरु ने उसका पूर्व भव कहना प्रारम्भ किया, हे भद्रे ! तुम दोनों पहिले जन्म में जिनमती और विनयश्री नामक सखियां थीं, तुम दोनों ने ही श्री जिन भगवान् के मन्दिर में दीप पूजा की थी, उस प्रभाव से दोनों ही देवलोक में गईं, वहां देव सुख भोग कर धनश्री का जीव च्युत होकर इस राजा की भार्या तू कन-

कमाला हुई, तुझको प्रतिबोध देने के लिये वह जिनमती देवी प्रतिदिन आकर उपदेश कहती है वह भी च्युत होकर यहां तेरी ही सखी होगी इस भव में तुम दोनों तप, शील, संयम का आदर कर सर्वार्थसिद्ध देवलोक में देवता होओगी। फिर तुम दोनों सवार्थसिद्ध विमान से च्युत होकर यहां मनुष्यावतार ले अत्यन्त सुख भोग कर अन्त में चरित्र ग्रहण कर कर्म का क्षय करके उत्कृष्ट गति सिद्धि के शाश्वत सुख पाओगी। जो तुमने श्री जिनेन्द्र भगवान् की दीप पूजा की है इस प्रभाव से मनुष्य सुख, देव सुख और अन्त में निर्वाण सुख पाओगी इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है।

ऐसे आचार्य के वचन सुनते ही उस रानी को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, उसने अपने पूर्वभव का सम्बन्ध जाना, जान कर कहने लगी, हे भगवन् जैसा आपने मेरा पूर्वभव का चरित्र कहा वह वैसे ही मैंने जातिस्मरण ज्ञान से जान लिया। यह कह कर श्रीजिन धर्म का आदर किया और भक्ति और विनय से धारण किया।

सभा का अवसर जान कर राजा रानी दोनों उठे और अपने घर गये। रात्रि के समय फिर वही जिनमती देवी आई और कहने लगी, हे भद्रे ! तुमने अच्छा किया जो जिनधर्म को अङ्गीकार किया। अब मैं भी देवलोक से च्युत होकर इसी नगर में सागरदत्त नामक सार्थवाह के पुत्री होऊंगी तुम मुझे प्रतिबोध देना, यह मैं अपना रहस्य तुम को कहती हूँ, ऐसा कह कर वह देवी अपने स्थान चली गई और शेष देवसुख भोगने लगी।

इधर रानी भी मनुष्य सुख आनन्द से भोग रही है इतने में वह जिनमती देवी च्युत होकर उसी नगर में सार्थवाह सागरदत्त के पुत्री तुलसा नामक सेठाणी की कुक्षि में उत्पन्न हुई, माता-पिता ने उत्सव कर उसका नाम सुदर्शना दिया। वह बढ़ती २ जब यौवनावस्था को प्राप्त हुई तब एक दिन श्रीजिनमन्दिर में कनकमाला रानी से मिलाप हुआ, तब रानी ने कहा—हे बाई! यह मन्दिर अपन ने बनवाया है देख ऊपर स्वर्ण कलश के ऊपर रत्न प्रदीप रक्खा है, अपन ने श्री ऋषभदेव स्वामी के दर्शन कई बार किये हैं और पहिले दीप पूजा की थी यह उसका प्रभाव है, जो अपन दोनो धन, ऋद्धि भोग रही हैं।

ऐसे वचन सुनते ही सुदर्शना विचार करने लगी, विचार करते२ उसको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे उसने पूर्व भव का सब अधिकार देखा और कहा—हे सखी! तुमने अच्छा किया जो मुझको प्रतिबोध दिया, यह कह कर अत्यन्त स्नेह से मिली। दोनों ने उत्तम कुल में श्रावक व्रत पालन किया, अन्त में शुद्ध परिणामों से मर कर सर्वार्थसिद्ध विमान में देवतापने उत्पन्न हुई। वहां देव सुख भोग कर च्युत हो इस मनुष्य भव में सुख पाकर अन्त में कर्म क्षय करके मोक्ष सुख की ऋद्धि प्राप्ति की।

यह श्रीजिन पूजा का माहात्म्य कहा है जो भव्य प्राणी दीप दान करता है उसको इन दोनों सखियों के जैसे सुख, संपदा मिलती है, यह कथा केवल प्रतिबोध के लिये कही गई है।

इतिश्री जिनेन्द्र पूजाष्टके दीपपूजा विषये पञ्चमी जिनमती कथा सम्पूर्णम्।

अधुना षष्ठी नैवेद्यपूजामाह ।

गाथा = ढोअइ बहुभत्ति जुओ, नेवज्जं, जो जिनेन्द चन्दाणम् ।
भुंजइ सो वरभोए, देवासुर मणुअनाहाणम् ॥ १ ॥

संस्कृतच्छाया = ढौकते बहुभक्तियुतो, नैवेद्यं यो जिनेन्द्र चन्द्राणां ।
भुङ्क्ते स वरभोगान्, देवासुर मनुजनाथानाम् ॥१॥

व्याख्या = जो प्राणी बहुत भक्ति और अनुराग के साथ श्री वीतराग जिनेन्द्र भगवान् के आगे नैवेद्य अर्पण करता है वह मनुष्य संबन्धी, व्यवहारी, सेठ, सेनापति, मन्त्रीश्वर, मण्डलीक, राज्य का सुख भोगकर फिर देवता संबंधी सुख पाता है ।

गाथा = ढोवइ जो नेवज्जं, जिणपुर ओ भत्ति निब्भर गुणेणं ।
सो नर सुर शिव सुक्खं, लहइ नरो हालिय सुरोव्व ॥२॥

संस्कृतच्छाया = ढोकते यो नैवेद्यं, जिनपुरतो भक्ति निर्भरगुणैः ।
सनर सुर शिव सौख्यं, लभते नरो हालिक सुरइव ॥२॥

व्याख्या = जो प्राणी इस मनुष्य भव को पाकर श्री जिनराज के आगे अत्यन्त भक्ति के गुणों से नैवेद्य रखता है वह प्राणी मनुष्यसुख और देवसुख पाकर अन्त में हाली अधिष्ठित देवता के जैसे निर्वाण सुख पाता है।

अथ हालिक कथा।

इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में क्षेमा नामक प्रधान नगरी है, वह सुरपुरी के समान शोभायमान है और अनेक मन्दिर, प्रासादों से देवमन्दिरवत् शोभायमान है । वह नगरी सूर्य समान तेजोवती है जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार अपने तेज से शत्रुओं को नष्ट कर देती है । वहां प्रतापी, तेजस्वी, राजशिरोमणि, शूरसेन नामक राजा राज्य करता था । उस देश के पास ही एक धन्ना नामक पुरानी नगरी थी । वह भी इसी राजा के वशी भूत थी । जिसको इसके पुरुखाओं ने बसाई है वहां एक छोटा राजा सिंहध्वज नामक रहता था, वह बड़े धैर्य और शूरता से राज्य पालता था ।

एकदा नगरी के प्रवेश मार्ग पर एक मुनिराज निश्चल ध्यान में बैठा है, तप करने का निश्चय कर अभिग्रह लेकर नियम से अटल और अचल होकर सूखे वृत्त के जैसे कायोत्सर्ग (काउसग्ग) में लीन होकर ध्यान में निश्चल होकर तप करता है । नगरी के लोग आते जाते उस साधु को अपशकुन जानकर घृणा करते थे, कई लोक नगरी के प्रवेश और निर्गम रोकने के कारण निर्दयपन और द्वेष से मस्तक पर मुष्टि प्रहार करते थे साधु निश्चल तप करता रहता था । जब राजपुरुषों को साधु की अवहेलना करते देखा तो पापी पुरुष पामर लोग साधु के मस्तक पर मुष्टि प्रहार करने लगे, मुनिराज के यह उपसर्ग हुआ, तो भी ध्यान से मेरु पर्वत समान निश्चल रहे धैर्य धारण कर लिया ।

लोगों का उपद्रव देख नगर का पालक क्षेत्राधिष्ठायक देव ने साधु की महिमा बढ़ा ने के लिये क्रोध धारण किया, और नगर के लोगों को महा अपराधी जाना, साधु के निर्दोषपने से प्रसन्न हुआ । बड़े उपसर्ग करते हुए लोगों को उसने विडम्बना की, साधु की मरणान्त अवस्था प्राप्त हो गई । इस अवसर में मुनि ने अ-त्यन्त तीक्ष्ण उपसर्ग सहन किया और घनघाती कर्म का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त किया उपशमचक्र पर चढ़ कर परमपद प्राप्त किया । वे मुनिराज महात्मा साधु अन्तकृत् केवली हो गये, अन्त में मुक्ति पद प्राप्त हो शा-श्वत सुख के भागी हो गये ।

नगर के अधिष्टायक देव मुनि के उपसर्ग से क्रुद्ध होकर नगर के लोगों पर उपसर्ग करने लगा, कई रोग जैसे मरी, मिर्गी, हैज़ा इत्यादि प्रवृत्त हो गये, नगरके लोग दुःखी हो गये। राजाने नगर के प्रधान मनुष्यों को बुलाकर कहा—यह कोई देव का उपद्रव है, सो आराधन करो जिससे शान्ति हो। जब सबने आराधना की तो क्षेत्राधिष्ठायक देव सतुष्ठ होकर बोला हे लोगों! तुम इस नगरको खाली करदो और दूसरी जगह बसाओ, जिस से तुम्हारे कुशल हो। राजा ने उस देव के वचनानुसार दूसरी जगह पूर्व दिशा में नगर बसाया और उस का नाम क्षेमापुर रक्खा इस से सब उपद्रव शान्त हुआ।

यहां पुराना नगर शून्य था वहां एक ऋषभ देव स्वामी का मन्दिर था। वहां उस देव ने सिंह का रूप धारण कर निवास किया, पापी, दुष्ठ पुरुष को मन्दिर में नहीं आने देता।

एक युवा पुरुष हाली (किसान) उस नगर का वासी दारिद्रय से दुःखी हो खेती का काम करता था, वह खेत मन्दिर के सामने था, प्रतिदिन हल चलाया करता था। उसकी स्त्री दुपहरी में अरस, विरस अन्न लेकर आती थी, वह जैसे तैसे खाकर अपना गुज़ारा करता था। आहार में घी, तेल की तो बास तक नहीं थी। इस प्रकार बड़े कष्ट से दिन बिताता था।

एक समय उस हाली ने आकाश मार्ग से उस मन्दिर में उतरते हुए एक चारण मुनि को देखा, वह मुनि श्री ऋषभदेव स्वामी के दर्शन और स्तुति करते थे। हाली को मुनि के दर्शन से हर्ष उत्पन्न हुआ और वह हल छोड़कर मन्दिर में आया, वहां एक तरफ बैठे हुए साधु को बड़े हर्ष और उत्साह से वन्दना की और विनय के साथ हाथ जोड़ कर बोला हे महाराज ! मैंने यह मनुष्य जन्म बड़ी कठिनता से पाया है, परन्तु मैं बड़ा दरिद्री हूँ-रात दिन बड़े दुःख से पीड़ित रहता हूँ। इस कारण मेरे धर्म क्रिया का उदय नहीं आया।

ऐसे दीन वचन हाली के सुनकर मुनिराज बोले हे भद्र ! तुमने पूर्व भव में धर्म का आदर नहीं किया और न गुरु भक्ति की, और न साधु को सुपात्र दान दिया। इससे इस जन्म में भोग रहित हुआ और दीन हीन होकर दारिद्र्य से पीड़ित रहता है, परन्तु कोई शुभ परिणाम के कारण यह मनुष्य भव पालिया है।

ऐसे वचन मुनिराजके सुनकर वह हाल पृथ्वीमें मस्तक लगाकर सब अंग झुकाकर बोला। हे भगवन्! आज से जो मुझे आहार मिलेगा उसमें से श्री जिनराज के अर्पण कर सुपात्र साधु को पात्र में देकर पीछे भोजन करूंगा। यह मेरा दृढ़ अभिग्रह है। मुनिराज ने ऐसे निश्चल वचन सुनकर कहा हे भद्र ! यह बात तुम

को योग्य है। श्रद्धा और भक्ति से यह कार्य करते रहना, जिससे इस लोक में राज्य संपत्ति मिलेगी और परभव में शाश्वत सुख मिलेगा। इसमें सदेह नहीं। ऐसा कहकर चारण मुनि आकाश में उड़ गये।

हाली भी खड़ा २ ऊंचा मुख करके देखता रहा और उसने बन्दना की। मुनिराज अपने इष्ट देश को चले गये। अब वह हाली प्रतिदिन वहां रहता हुआ इस प्रकार करने लगा, जब उसकी स्त्री भाता (भोजन) लेकर आती तब उसमें से थोड़ा सा श्री जिनराज के अगाड़ी समर्पण करता, पीछे शेष खुद खाता। इस प्रकार करते २ उसको कितने ही दिन व्यतीत हो गये। एक दिन दोपहर हो गई अत्यन्त भूख लगी, तो भी उसके भाता नहीं आया-बहुत समय बीत गया, यह भूख से व्याकुल होता हुआ अपनी स्त्री की राह देखने लगा। इतने में वह स्त्री भाता लेकर आई, जब वह जल्दी से कवल (ग्रास)लेकर अपने मुख में प्रवेश करने लगा, इसको तो उसी समय अपना नियम स्मरण आया, इसने ग्रास को अलग रखा दूसरा अन्न लेकर नैवेद्य अर्पण करने को श्री जिन राज के मन्दिर की तरफ चला।

इस हाली के तत्वकी परीक्षा करने को नगराधिष्ठित देवसिंह रूप धरकर मन्दिर के द्वार पर बैठा है। यह देख हाली मन में विचार करने लगा, अब कैसे किया जाय; यदि नहीं जाऊ तो नियमभङ्ग होता है और

नैवेद्य अर्पण किये बिना भोजन कैसे करूं ? ऐसा विचार साहस रख कर, चाहे मरण हो या जीवन रहो ऐसा दृढ़ निश्चय कर अगाड़ी चला। यह जैसे २ अगाड़ी पग रखता था वैसे २ देव ने अपने पैर पीछे हटाये, इस तरह धीरज से मन्दिर में प्रवेश कर श्री जिनराज को प्रणाम कर नैवेद्य उसने रख दिया; इतने में वह सिंह अदृश्य हो गया। हाली भक्ति से भरे हुए अंग से राग के साथ नैवेद्य रखकर नमस्कार कर अपने स्थान आ गया, जब वह भोजन करने बैठा, तो वह देव साधु का रूप रखकर उसके पास आया, उसने उसमें से चौथा भाग साधु को दे दिया, साधु भी लेकर चला गया। फिर जब खाने को कवल हाथ में लिया, त्योंही वह देव फिर साधु का रूप धर सामने आया, हाली ने फिर अपने शेष भोजन में से फिर दिया एवं फिर भोजन को बैठा, फिर वह देव स्थविर साधु का रूप रखकर आया, हाली ने अपना शेष समस्त भोजन दे दिया।

इस प्रकार उसकी सत्य परीक्षा कर दृढ़ निश्चय जान कर मूलरूप धर कर देव प्रत्यक्ष प्रकट हुआ और कहने लगा, हे साहस धारी ! सत्यवान् ! पुरुष ! मैं तेरी भक्ति देख कर प्रसन्न हुआ हूँ, तेरा अनुराग श्री वीतराग धर्म पर है इसलिये मन चिंतित अर्थ तू मांग, मैं देने को तैयार हूँ। इस तरह देव के वचन सुन कर हाली बोला हे देव! जो तुम मुझ पर संतुष्ट हुए हो तो ऐसा वर दो जिससे मेरा दारिद्र रूप अन्धकार लीन

हो। यह सुन देवता 'तथास्तु' (वैसा ही हो) ऐसा कहकर अपने स्थान चला गया । हाली भी प्रसन्न हुआ अपनी स्त्री से सब वृत्तान्त कहा, वह बोली हे स्वामी ! तुम धन्य हो जो तुम्हारी भक्ति श्री जिनराज के चरणों में है इसीके कारण देवता भी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ है और वर देकर गया है।

इस प्रकार उसकी स्त्री ने भी धर्म की अनुमोदना की, जो मनुष्य भाव शुद्धि से पुण्य का संचय करता है उसकी यदि दूसरा मनुष्य अनुमोदन करे तो वह भी भव २ में सुख पाता है।

क्षेमपुरी नगरी का स्वामी शूरसेन नामक राजा की विष्णुश्री नामक पुत्री थी, वह साक्षात् विष्णु की स्त्री लक्ष्मी के समान थी, उसका वर ढूंढ़ने के लिये राजा ने देश, देशान्तरों से सब राजकुमारों को बुलाया और स्वयंवर मण्डप बनवाया। वह स्वयंवर अनेक पोल, सभा और राजसिंहासनों से सुशोभित था और नगरी के बाहर उद्यान खंण्ड में विराजमान था। जिसमें सुवर्णमय स्तंभ रत्न जटित थे, साक्षात् प्रधान देवभवनवत् प्रकाशमान था। राजकुमार आने लगे, अपने वस्त्र और आभूषणों से सजधज कर सिंहासनों पर बैठ गये, जिनके शरीरों में अद्भुत श्रृङ्गार था और पुष्पमाला और अतर, फुलैल की सुगन्धि से चारों ओर मण्डप को सुरभित कर दिया था। रत्न जटित स्वर्णमय, उच्च सिंहासनों पर बैठे हुए विमानारूढ देवकुमारवत् शोभा देते

थे। जिनके मस्तक पर मुकुट छत्र और पास में हिलते हुए चामरों ने कान्ति को द्विगुण कर दिया था। वे अपने २ राजकुलरूप कमलवन को सूर्य समान विकस्वर करते थे। उनमें राजकुमारी स्वरुचि के अनुसार वर ढूंढने को हंसनी के समान विचरती थी।

अब उस राजकुमारी के गमन समय में बहुत से बाजे बाजने लगे। शंख, पटह और झालरादि वाद्यों का शब्द आकाश तक पहुंच गया, बाजे ऐसे मालूम होते थे मानों देवताओं ने ही बजाये हैं। वह हाली भी उस नगरी के पास मनुष्यों की भीड़ और नाटकादि के समारोह और कई प्रकार के बाजों के शब्द सुनकर वहां आया, उसके हाथ में हल की लकड़ी थी, सब समुदाय के साथ खड़ा २ मण्डप और राजकुमारों की शोभा देखता था।

अब राजकुमारी बहुतसी सखियों के परिवार के साथ मण्डप की ओर आई, साथ में प्रतिहारी थी वह लेख लिखित के अनुसार प्रत्येक राजकुमारों का वर्णन करने लगी। उनके देश, घोड़ा, रथ, पैदल और ऋद्धि का वर्णन करने लगी। उनके देश, घोड़ा, रथ, पैदल और ऋद्धि का वर्णन कर माता-पिता के नाम बताये, परन्तु राजकुमारी को एक भी पसन्द न आया। उनको छोड़ कर हाली के पास गई, वह अधिष्ठायक देव की

सहायता से खड़ा था, उसको देव सहायी समझ कर उसके गलेमें माला पहिनादी और अपना वर अंगीकार किया। ऐसी अनुचित बात देखकर माता-पिता असंतुष्ट हुए। राजकुमारी के बांधव वज्राहत समान दुःखी होकर चिन्तातुर हुए विचारने लगे, देखो इस कुमारी ने मूर्खपन किया, बड़े २ गुणी, शूर, प्रतापी, राजाओं के कुमारों को छोड़कर हीनकुल,गवार, किसान को अंगीकार किया।

शास्त्र में कहा है कि कौए के गले में मोती नहीं शोभता है, कुत्तेके कण्ठ में पुष्पों की माला, गधे पर रेशम की झूल नहीं शोभा पाती। इसी प्रकार यह कन्या हालीके घर पर नहीं शोभा देती है। इस तरह क्षणभर उदास हो राजा शूरसेन आदि सब राजाओं ने परस्पर विचार किया कि इसके हलको तोड़कर हाली को मारकर कन्या लेलेना चाहिये, नहीं तो राजकुल में कलङ्क लग जायगा।

इतने में एक चण्डसिंह नामक प्रतापी राजा बोला, इस कन्या ने मूर्खपन किया है जो हाली को अंगीकार किया, अब फिर स्वयंवर करवाना चाहिये और जिसको अपनी रुचि से कन्या बरे उसके साथ पाणि-ग्रहण (विवाह) होना चाहिये। इन वचनों से राजा शूरसेन बहुत व्याकुल हुआ। इस अवसर में अधिष्ठायक देव ने राजा का परिणाम फेर दिया, उसका पिता बोला हे राजा लोगो! इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है, इस

कन्या ने अपने मन से ठीक जानकर किया सो ठीक है, मंडप में जो बात की जाती है वह सब को प्रमाण करनी पड़ती है। मुझे तो कन्या का किया हुआ ही ठीक प्रतीत होता है, इस में हठ करने की आवश्यकता नहीं, यह काम तो स्नेह और पूर्वलिखित कर्मों के ही सम्बन्ध से हो जाता है।

अब चंडसिंह राजा सब राजाओं से कहने लगा, यह कुमारी का पिता तो डरपोक है इसलिये यह ऐसे वचन कहता है। फिर क्रोधसे बोला-हे राजाओ! तुम मत घबराओ, लड़ाई के लिये तैयार होजाओ, इस भोली कन्या को अलग करदो, सुभट पणो दिखाओ, इस हालीको पकड़ो, इसके हल को तोड़ डालो और जो कोई इसका पक्ष ले उसको भी मारो। ऐसे उस प्रधान राजाके वचन सुन चारों दिशाओं से राजा लोग शस्त्र लेकर उठे और हाली से कहने लगे, अरे पामर! मूर्ख! इस प्रधान सुकुमाल राजकुमारी को कैसे लेजाता है? छोड़ दे।

ऐसे क्रोधके वचन सुन देवता सहायवान् हाली बोला-अरे पापी! लंपट लोगो! ऐसे वचन कहते तुमको लज्जा नहीं आती? अथवा तुम्हारी जीभके सौ टुकड़े क्यों नहीं होजाते? जो तुम परस्त्री पर अभिलाषा करते हो। क्षत्रियों का यह धर्म नहीं है, क्षत्री ऐसी अयुक्त बात मुंहसे कभी नहीं कहते? मैं पामर नहीं हूँ, तुम ही

वह हाली हलको धारण करता हुआ बलभद्र के समान पराक्रमी क्रोधसे अग्निवत् देदीप्यमान खड़ा है और अकेला संग्राम में उनसे युद्धकर उसने जय लक्ष्मी को प्राप्त करली। इसने एक हलके तीखे अग्रभाग से शत्रुओं के शिर काट दिये, हाथियोंके कुम्भस्थल को भिन्नकरदिये, घोड़ों के समूहका चूर्ण किया, रथ समुदाय को तोड़ डाला, सुभटोंके छक्के छूटगये, सब सेना का अहंकार जाता रहा। किसी भी सुभटकी हिम्मत सामने खड़ा रहने की न रही, दूर से खड़े २ देख रहे थे, इतने में चंडसिंह प्रमुख सब राजा इकट्ठे होकर विचार करने लगे, क्या यह साक्षात् यमराज है ? जो सर्व प्रजाका क्षय करने को उद्यत हुआ है, या कोई देव है ? इस प्रकार जीवितव्य का विचार कर उस देव-कोप को शान्ति करने को पास गये और हम शरण हैं ऐसे वचन बोले। हम निर्बल हैं, आप सबल हैं, हमारी रक्षा करो ! रक्षा करो ! यह कहते हुए हाली के पैरों में पड़गये, मन में बड़ा त्रास प्राप्त हुआ, और बोले हे वीर पुरुष ! तुम गुणवान, पुण्यवान् हमारे स्वामीहो, हम तुम्हारे सेवक हैं, हमें आज्ञा दो।

इस प्रकार वार २ उस हाली को प्रणाम करते हैं और कहते हैं तुम धन्य हो, पराक्रमी हो। यह कह कर हाथ जोड़ कर खड़े रहे। इतने में उस कन्या के माता पिता, परिवार और बांधव प्रमुख उस हाली का

अद्‌भुत पराक्रम देख कर प्रसन्न हुए और विवाह की सामग्री तैयार करने लगे। विधि पूर्वक बड़े उत्सव के साथ उस राजकन्या का विवाह करदिया, अर्थात् शूरसेन राजा ने अपनी पुत्री विष्णुश्री को सब राजाओं के समक्ष उस हलपति को देदी।

वहां सब राजाओं ने मिलकर उस हाली का राज्य सम्बन्धी पाट महोत्सव किया और विनती की, हे महाराज! अब से तुम राजा हो, हमारे स्वामी हो, हम तुम्हारे सेवक होकर आज्ञा में चलेगे। इस प्रकार सबने सिंहासन पर बैठा कर राजपद दिया। हालीराजा ने भी उन सबको सन्तोष दिया और कहा आज से तुम को मैंने अभय दान दिया है, ऐसा कहकर सबको सम्मान प्रदान किया। हाली-राजा के श्वसुर शूरसेन ने उन सबों का वस्त्र अलंकारादि से सत्कार कर अपने २ देशों को विदा किये। इस प्रकार हाली के मनोरथ सफल हुए।

एक दिन अधिष्ठायक देव ने आकर हाली से कहा हे भद्र! अब तेरा दरिद्र गया, तू सन्तुष्ट हुआ। यदि फिर जो तेरी कोई इच्छा हो सो मांग, मैं देनेको उद्यत हूँ। ऐसे वचन सुनकर हाली राजा बोला, हे स्वामिन्! यदि आप मेरे पर प्रसन्न हैं तो जिस नगरी को आपने क्रोध कर उजाड़ दी थी और शून्य की थी, उसको बसाकर मुझे दो तो मैं वहां रहूँ और आपकी कृपा से वहां का राज्य करूं, यहां सुसराल में मेरा रहना उचित नहीं।

इतने वचन सुनते ही देव ने उस नगरी को बसादी, जिसमें स्वर्णस्तंभ, रत्नजटित भवन बनाये, चारों ओर उच्च प्राकार बनाया। मध्य में एक रमणीय, अद्भुत स्वर्णमय, उज्वल, प्रासाद (राजमहल) बनाया। उसमें हाली राजा विष्णुश्री के साथ रहने लगा– सब ऋतुओं के अनेक प्रकार के भोग विलास इंद्र–इंद्राणी के समान भोगता था। अपनी राजधानी विमानवत् विराजमान थी।

(यह सब श्री वीतराग भगवान् के नैवेद्य पूजा का फल है–इसके उत्कृष्ट पुण्य का उदय हुआ है।)

इस प्रकार अपनी स्त्री के साथ उसको सुन्दर राज्य सुख, श्री वीतराग भगवान की नैवेद्य पूजा के प्रताप से मिला, यह जान उस हाली राजा ने वहां श्री जिनराज की भक्ति प्रारंभ की और प्रतिदिन अनुराग से विविध प्रकार से नैवेद्य पूजा करने लगा। इस प्रकार धर्म ध्यान करते २ और अखंड राज्य सुख भोगते २ समय व्यतीत होता है।

इस अवसर में वह अधिष्ठायक देव अपनी आयु पूरी करके देवलोक से च्युत होकर विष्णुश्री के गर्भ में पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने अपने परिवार के साथ उत्सव कर उस कुंवर का नाम कुसुम कुमार दिया– वह

कई धाइयों से लालन-पालन किया जाता हुआ यौवनावस्था को प्राप्त हुआ। सब कला सिखाई गई। हाली राजा अपने पुण्य प्रभाव से उसपर अत्यन्त प्रीति रखता था, कुमार अपने माता पिता का अत्यन्त वल्लभ था। उस हाली राजा ने अपना राज्य का काम पुत्रको सौंप दिया, स्वयं श्रावक की करणी करने लगा–अन्त में आयु क्षय कर प्रथम देव लोक में उत्पन्न हुआ।

वहां जय २ कार शब्द सहित बड़ी ऋद्धि, विमान, देव देवियों का परिवार देखकर विचार करने लगा मैंने पूर्व भव में श्री वीतराग भगवान् की नैवेद्य पूजा की थी, उसका यह फल है। अप्सराओं की सुख संपत्ति देख अवधि ज्ञान से अपने पूर्व जन्म का सबंध जान लिया–और राज्य करते हुए अपने पुत्र को प्रति बोध देना चाहा। वहां से अपने राज्य में आकर पिछली रात को अपने पुत्र से कहने लगा–हे प्रिय पुत्र ! तू मेरी बात सुन मैंने पूर्व जन्म में श्री वीतराग भगवान् के नैवेद्य की पूजा की थी, उससे मुझे देवताओं की ऋद्धि, देवसुख प्राप्त हुआ है। यह सब धर्म का ही प्रभाव है–अतः हे महा यशस्वी, वल्लभ पुत्र! तुम भी धर्म का उपार्जन करो जिससे सुख पाओगे, ऐसा प्रतिदिन कह कर वह देव चला जाता।

एक दिन कुसुम राजा ने विचार किया यह कौन है ? जो मुझे मधुर वचन सुना कर अदृश्य हो चला

जाता है, ऐसा विचारकर दूसरे दिन जब देव आया तब पूछने लगा। हे देव! तुम कौन हो? प्रतिदिन सुन्दर वचन से कुछ कहते हो। प्रतिदिन मेरे उपकार की बात कहकर चले जाते हो। मुझे इस बात को सुनने का बड़ा कौतुक है। ऐसे वचन सुन देव बोला, हे पुत्र! मैं तुम्हारा इस भव का पिता हूँ। मैंने मनुष्यभव में श्री जिनराज की नैवेद्य पूजा की थी, इससे देवलोक में बड़ी ऋद्धि विमान, देवसुख मिला है—सो निरन्तर भोगता हूँ। तुमको संसार के विषयों में मोहित जानकर धर्म का प्रतिबोध देने को आया हूँ, तुम भी मेरी आज्ञा से जिनभाषित धर्म का आदर करो। ऐसा कह कर वह देव अपने लोकमें चला गया, वहां देव सुख भोगने लगा। अन्त में यही हाली का जीव सातवें भव में शाश्वत् सुख मोक्ष को प्राप्त होवेगा। हे भव्य लोगो! इस प्रकार श्री वीतराग की नैवेद्य पूजा का फल कहा। जीव को इस भव में दुर्लभ मनुष्य सुख मिलता है, अन्त में उत्कृष्ट देव संपत्ति और अलभ्यसुख प्राप्त होता है, तदनन्तर मोक्ष के अनुपमसुखको भोगता है।

इति श्री जिनपूजाष्टके नैवेद्यपूजा विषये, षष्टं हालिक पुरुष कथानकं सम्पूर्णम्।

अधुना सप्तमी फल पूजा माहात्म्यमाह ।

गाथा = वरतरु फलाइ ढोयइ, भत्तीए जो जिणिन्दचन्दस्स ।

जम्मन्तरेवि सहला, जायन्ति मणोरहा तस्स ॥१॥

संस्कृतच्छाया = वरतरुफलानि ढौकते, भक्त्या यो जिनेन्द्रचन्द्रस्य ।

जन्मान्तरेऽपि सफला, जायन्ते मनोरथा स्तस्य ॥१॥

व्याख्या = जो प्राणी श्री जिनराज के सन्मुख भक्ति और अनुराग के साथ उत्तम वृक्षों के फलों को अर्पण करता है उसके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं। और दूसरे जन्म में भी सफल (फलदायी) होते हैं। अर्थात् फल पूजा करने वाले को सर्व फल की प्राप्ति होती है।

गाथा = जिनवर फल पूआए, पाविज्जइ परम इड्ढि संपत्ति ।

जह कीरमिहुणगेण, दरिद्दनारी सहिअगेण ॥ २ ॥

संस्कृतच्छाया = जिनवर फल पूजया, प्राप्यते परमर्द्धि सम्पत्तिः ।
यथा कीरमिथुन केन, दरिद्र नारी सहित केन ॥ २ ॥

व्याख्या = श्री वीतराग भगवान् के सन्मुख फल पूजा के करने से प्राणी को उत्कृष्ट ऋद्धि और राज्यादिक की सम्पत्ति शुक पत्ती के जोड़े और दुर्गता नामक दरिद्र स्त्री के जैसे प्राप्त होती है ।

अथ कथा प्रारभ्यते ।

इस पृथ्वी मण्डल में इन्द्रनगरी तुल्य काञ्चनपुर नामक नगरी है, वहां १८ वें तीर्थङ्कर श्री अरनाथ स्वामी का मन्दिर है, उसके सामने उत्तम कमलवत् कोमल पत्ते और मंजरी और मधुर फल युक्त एक बड़ा मनोहर आम का वृत्त है। उसके कोटर (छिद्र) में एक शुक पत्ती का जोड़ा रहता था। उस मन्दिर में कई बार महोत्सव होते रहते थे। उस नगरी के राजा का नाम जयसुन्दर था, श्री जिनराज की पूर्ण भक्ति करता था। एक समय बड़े उत्सव के साथ नगर के लोगों के समुदाय सहित उस राजा ने फल पूजा की।

वहां एक दुर्गता नामक दरिद्र स्त्री रहती थी, वह राजा आदि को फल पूजा करते देख कर विचार करने लगी, धन्य है यह लोग जो अनेक प्रकार के फलों से श्री जिन भगवान् की भक्ति पूर्वक फल पूजा करते हैं।

मैं इस दारिद्र्य दुःख से, पीड़ित हूँ, मुझे एक फल भी नहीं मिलता, मैं कैसे पूजा कर सकूं ? इस प्रकार विचार दुःखित हो मन्दिर के सामने जाकर आम के वृक्ष के नीचे बैठ गई। ऊपर शुकपक्षी आमके पके हुए फल खा रहा था। उसको देख कर दुर्गता ने कहा—हे पक्षीराज ! यदि तू मुझे एक फल देवे तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो। सुनकर शुक बोला—हे भद्रे ! तू फल से क्या करेगी ? स्त्री ने कहा—श्री जिनराज की भक्ति से फल पूजा करूंगी। फिर यह भी कहा कि यदि तुम फल मुझे दोगे तो श्री प्रभु के आगे फल समर्पण करके यह विनती करूंगी कि इसका पुण्य शुक पक्षी और मुझे दोनों को मिले, इस कामना के लिए मैं तुमसे फल-याचना करती हूं।

यह सुन शुक बोला, हे भद्रे ! इस फल पूजा से क्या लाभ होता है ? तब वह कहने लगी—हे शुक ! जो प्राणी मनुष्य जन्म लेकर श्री जिन भगवान् की भक्ति से फल पूजा करता है उसके सब चिन्तितार्थ सफल होते हैं, ऐसा मैंने पहिले गुरु के मुख से उपदेश सुना था। श्री वीतराग भगवान् के भी यही वचन हैं, इसलिये तुम मुझे फल दो, जिससे मेरी कामना सिद्ध हो। यह वचन सुन शुकी बोली, मैं स्वयम् जाकर श्री जिनराज की फल से पूजा करूंगी, तुमको आम का फल नहीं दूंगी, मैं ही इसका फल पाऊंगी। यह सुन शुक पक्षी ने एक आम का फल उसको दिया और कहा कि तू अपना मनोरथ सिद्ध कर। वह स्त्री प्रसन्न हुई आम का फल

लेकर श्री वीतराग के मन्दिर में गई और उसने भक्ति से फल समर्पण किया और भावना करती हुई एक तरफ बैठ गई, किंचित् काल ठहर कर अपने घर गई। इतने में वह शुक का जोड़ा भी अपनी २ चोंच से फल उठा कर वहां गया और अनुराग से श्री जिनेन्द्र के सामने रख दिया और विनती करने लगा हे प्रभो! मैं आपकी स्तुति नहीं जानता हूँ और विधि भी नही जानता परन्तु जो फल इसके समर्पण से होता है वह हमको भी प्राप्त हो, इस तरह कह कर अपने स्थान को चला गया।

वह दुर्गता स्त्री शुभ परिणाम से आयु का क्षय कर फल पूजा के प्रताप से देवलोक में उत्पन्न हुई, वहां अनेक तरह के उसको सुख प्राप्त हुए। वह शुक मर कर महाविदेह क्षेत्र में गन्धिलावती नगरी में शूर नामक राजा की रयणा नामक रानी के गर्भ में उत्पन्न हुआ। गर्भ में जाते ही तत्काल रानी को दोहद उत्पन्न हुआ। दिन २ दुर्बल शरीर होने लगा, एक समय राजा ने पूछा-हे प्रिये! तुझे कौनसा दोहद उत्पन्न हुआ, जिसकी चिन्ता से तेरा शरीर दुर्बल होता जाता है?

यह सुन रानी ने कहा-हे प्रियतम! अकाल में आम के फल खाने का दोहद उत्पन्न हुआ है सो कृपा कर पूर्ण करो, मुझे चिन्ता है कि वह किस तरह मिलेगा? इससे मेरा शरीर दुर्बल होता जाता है; आप कोई

उपाय कीजिये। यह सुन राजा बड़े चिन्ता समुद्र में गोता खाने लगा और विचार करने लगा कि यह बात कैसे बने, यदि न हुई तो रानी अति चिन्तातुर होकर प्राण त्याग कर देवेगी, इसमें संदेह नहीं। इस प्रकार राजा अत्यन्त दुःखित हो गया।

इतने में देवलोक में अवधिज्ञान से दुर्गता देव ने जाना कि वह शुक का जीव रानी के गर्भ में उत्पन्न हुआ है। ऐसे पूर्व भव का स्नेह जान कर वह देव राजा के पास गया और पूर्व भव का उपकार जान कर सहायता करना चाहा। इसने विचार किया कि इसने पूर्व भव में मुझ को एक आम का फल पूजा के लिये दिया था इसलिए इसकी माता का मनोरथ पूर्ण करना मेरा कर्त्तव्य है। ऐसा विचार उस नगरी में आकर एक सार्थवाह का रूप बना कर एक पके हुए आम के फलों की छाब लेकर राजद्वार पर आया। राजा ने उसको भीतर बुलाया उसने सभा में जाकर राजा को फलों की भेट की। राजा ने सुन्दर फल देखकर सार्थवाह से कहा, अहो सत्पुरुष! आप कहां से आये हो, ये आम के फल अकाल में कहां से लाये? इस प्रकार राजा के पूछने पर सार्थवाह बोला, हे राजेन्द्र! इस रानी की कुक्षि में जो पुत्र उत्पन्न होगा उसके पुण्य प्रभाव से अकालिक फल मैंने पाये हैं। ऐसा कह कर वहां से विदा हो गया।

वह राजा आनन्द को प्राप्त हो विचार करने लगा यह कोई देव मालूम होता है, इस गर्भस्थ पुत्र के साथ इस देव का पूर्वभव संबंध ज्ञात होता है, ऐसा विचार कर देवनिर्मित फलों से रानी का दोहद पूर्ण किया।

अब पूर्ण दिन होने पर रानी के पुत्र का जन्म हुआ, पैदा होते ही उस कुमार के सुलक्षण देवकुमार वत् देख कर बधाई देने को राजा के पास सेवक दौड़े। पहिले बधाई वाले को राजा ने सन्तुष्ट होकर इतना द्रव्य दिया कि उसका दारिद्र चला गया।

दश दिन व्यतीत होने पर राजाने महोत्सव किया, श्री जिन पूजा गुरु पूजा की और अनाथों को इष्ट दान करा कर सतुष्ट किया। शुभ दिन, शुभनक्षत्र, शुभमुहूर्त में सब कुटुम्बियों को बुलाकर बड़े उत्सव के साथ उस कुमार का नाम फलसार दिया। राजकुमार सौभाग्य गुण से शोभित था। जब यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ, तब लावण्य और रूप की कान्ति द्विगुण हो गई। कामदेव समान रूपवान् उस राजकुमार को देखकर इन्द्र भी अपने रूपमद को छोड़ता है। कुमार ऐसा ही बलवान् और तेजस्वी देव कुमार सदृश है।

एकदा वही दुर्गत देवता देवलोक से आकर राजकुमार को पिछली रात्रि में इस प्रकार कहने लगा, हे राजकुमार! मेरे वचन सुनो, जो तुमने पूर्वभव में सुकृत कर्म का आदर किया था, उस कथा को कहता

हूँ। पहले कीरभव में तुम्हारी एक स्त्री थी, तुम दोनों ने मिलकर श्री जिनराज के सामने फल पूजा की थी, जिसका फल यह हुआ कि तुमने इतनी राज्य लक्ष्मी पाई है। तुम्हारी स्त्री भी फलदान के प्रभाव से देवलोक में गई और वहां से होकर राजपुर में राजा की पुत्री उत्पन्न हुई है। तूने एक आम का फल मुझे भी दिया था, जिससे मैंने भी श्री जिनराज की पूजा की थी, जिसका फल मैंने बड़ी ऋद्धि पाई है। जब तुम गर्भ में थे तब तुम्हारी माता को अकाल आमफल खाने का दोहद उत्पन्न हुआ" उसको मैंने ही पूर्ण किया था। जो तुम्हारी शुकभव में भार्या थी वह राजपुर नगर में अमरकेतु राजा के पुत्री चन्द्रलेखा नामक उत्पन्न होकर यौवनावस्था को प्राप्त हुई है, उसका स्वयंवर मण्डप रचाया गया है, उसमें कई राजकुमार आवेंगे। तुम अपने पूर्वभव का संबध बताने को एक शुकमिथुन को चित्रपट में चित्रित करा कर लेजाना और उस राजकुमारी को दिखलाना। उस चित्र को देखते ही वह राजकुमारी जाति स्मरण ज्ञान से तुमको पहिचान कर वरमाला पहिना देगी, फिर उसके साथ तुम्हारा पाणिग्रहण होगा। इस बात में सन्देह मत जानो। यह तुम्हारे पूर्व जन्म की कथा है। ऐसा कहकर वह दुर्गत देवता अपने स्थान चला गया।

उधर स्वयंबर मण्डप बनाकर सब राजाओं को निमन्त्रण भेजा गया और इस राजा को भी बुलावा आया, तब राजकुमार भी शुकयुगल का चित्र पट साथ लेकर स्वयंबर में गया। वहां कई राजकुमार आये, और

सिंहासनों पर बैठे। राजकुमारी ने सब को देखा परन्तु एक भी पसन्द न हुआ। तब इस राजकुमार ने चित्र पट भेजा। उस राजकुमारी ने शुक युगल का चित्रपट देख कर जातिस्मरण ज्ञान से पूर्व भव के स्नेह वश फलसार राजकुमार के गले में वर माला पहना दी।

राजा ने प्रसन्न होकर शुभ महूर्त में विवाह किया, और एक महल रहने को दिया। वहां यह अनेक हाव, भाव, प्रमोद, हास्य और नाटक विलास करते हुए रहते हैं। कितने ही दिनों के पीछे राजकुमार को अपनी पुत्री के साथ सीख दी। सब नगर के लोगों के देखते २ प्रधान वस्त्र, आभूषण, रत्न, मणि, माणिक्य और दास दासी प्रमुख देकर विदा किया।

राजकुमार भी अपनी स्त्री शशिलेखा के साथ अपने श्वशुर से आज्ञा मांगकर सम्मान पाकर अपने नगर की तरफ चला। वहां पहुँच कर सुख से अपनी स्त्री के साथ अनेक प्रकार के विषय सुख भोगने लगा। सुख में दिन घड़ी के समान, वर्ष दिन के समान बीतते थे। मन में जिस वस्तु को चाहता था उसी को सहज ही पाता था, पूर्व भव में जो श्री वीतराग की फलपूजा की थी, उसके फल स्वरूप महा सुख भोगता था।

कोई समय सौधर्म देवलोक की सभा में इंद्रमहाराज बैठे थे, वहां सब देवताओं का समुदाय बैठा

था, उनके सामने इंद्र ने कहा आज कल मृत्युलोक में फलसार कुमार बड़ा पुण्यवान् है, वह जिस बात को मन में विचार करता है वह ही तत्काल प्राप्त होजाती है । यह सुनकर कोई अहंकारी देव इद्र के बचनों का विश्वास नहीं कर के परीक्षा करने को देव लोक से निकल कर यहां आया और महाभयङ्कर सर्प का स्वरूप बनाकर फलसार की स्त्री शशिलेखा को डस गया । सब राजकुल व्याकुल होगया, राजा दुःखित होकर चिन्ता करने लगा । कई गारुणी मन्त्रवादी बुलाये उन्होंने उपचार किये परन्तु शान्ति न हुई । तब गारुणियों ने कहा इस का उपचार हमसे नहीं होता, ऐसा कह कर वे सब अलग होगये । तब राजाने परिवार सहित बहुत चिंता की। जब रानी मूर्च्छित होकर चेष्टा रहित होगई । तब वही देवता वैद्यरूप धारण कर वहां आया और कहने लगा, "हे कुमार ! यदि कल्पवृक्ष की मंजरी देव लोक से आवे तो रानी जीवित हो सके," ऐसा कह कर वहां खड़ा रहा । राजकुमार को स्त्री का बड़ा दुःख हुआ, मन में अत्यन्त क्लेश पाया । इतने में वही दुर्गत देवता ज्ञान से राजकुमार को दुःखी जानकर वहां कल्पवृक्ष की मंजरी हाथ में लेकर आया, उसकी सुगन्ध से रानी का विष शांति होगया । सबके मन में अत्यन्त हर्ष हुआ, सब दुख मिटगया ।

इतने में देवताने कुमार को सामर्थ देखने के लिये वैद्य रूप छोड़कर हाथी का रूप धारण किया और कुमार के सामने देखने लगा । कुमार ने देवता की सहायता से सिंह का रूप धारण किया और देव के सामने

देखने लगा, तब देव ने शार्दूलसिंह का रूप धारण किया, कुमार ने अष्टापद (सिंह) का रूप दर्साया। तब देवता ने मायावी रूप छोड़ कर अपना मूल रूप (देवत्व) धारण किया और प्रत्यक्ष होकर दर्शन दिये। कुमार के प्रभाव से सन्तुष्ट होकर कुमार से बोला "अहो सत्पुरुष शिरोमणि, राज कुमार! जैसी इन्द्र महाराज ने आप की महिमा की थी, हमने उसको प्रत्यक्ष आंखों से देख लिया, आप अति पुण्यवान हैं। हे धर्मधारक! आप अपनी मनो वांच्छित इष्ट वस्तु मांगो, मैं देने को उपस्थित हूं, प्रभाव से सन्तुष्ट हुआ हूँ।

ऐसे देव के वचन सुनकर कुमार ने कहा हे सुरवर्य! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे नगर को देव नगरवत् कर दीजिये। ऐसे कुमार के बचन सुनते ही देवता ने "तथास्तु" कह कर क्षण भर में नगर की रचना अनुपम कर दी। जिसके कोट चारों तरफ सुवर्ण मय और रत्न जटित हैं, ऐसे ही मध्य में गढ़ बनवाया है। जाली, झरोखे और गवाक्ष सब स्फटिक रत्नमय बने हैं। सब नगर देवपुरी सदृश है। उसके मध्य अलंकार भूत राजकुमार के लिये राज भवन बनाया है। वहां राज कुमार अपनी स्त्री सहित सुख भोगता है। इस प्रकार नगर की रचना कर के राजकुमार के पास आया और सन्तोष देकर अपने देव लोक में चला गया।

कुमार ने नगरी की रचना देव द्वारा की गई जानी, बड़े पुण्य का सम्बन्ध मिला ऐसा जान कर मन में सन्तुष्ट हुआ। हृदय में हर्ष इतना हुआ जो समाया नहीं। इस प्रकार कुमार अत्यन्त सुख सहित रहने लगा।

कितने ही दिन व्यतीत होने पर कुमार के पिता सूर राजा ने गुरु मुखसे धर्मोपदेश सुन कर कुमार को राज पद पर बैठा दिया और स्वय जिनमार्ग पर चलने को निकला। शीलंधर आचार्य के पास जाकर दीक्षा लेली।

अब कांचनपुर में फलसार राजा राज्य करने लगा और शशिलेखा रानी के साथ राज्य सुख भोगने लगा। इन्द्रवत् राज्य पालने लगा। इस प्रकार राज्य करते २ उस राजा फलसार के एक कुमार शशिलेखा की कुक्षिसे पैदा हुआ और उसका नाम चन्द्रसार दिया गया।

कुमार भी माता पिता को सुख देता हुआ आनन्द के साथ बढ़ने लगा। साथियों के साथ कला ग्रहण करने लगा। चन्द्रमा के सदृश कुल कुमुद वन को प्रफुल्लित करता हुआ वाल्यवस्था छोड़ कर यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ।

फलसार राजा अपनी रानी के साथ निर्मल भक्ति सहित श्रीजिनराज के आगे फल पूजा सदा करने लगा। अपनी वृद्धावस्था जान कर वैराग्य को प्राप्त हो चन्द्रसार कुमार को राज्य सोंप कर रानी के साथ गृह से निकल गया। श्री जिनराज मार्ग का आदर करके शुद्ध चारित्र पालन करने लगा। रानी के साथ उग्र तपस्या करके निर्मल अध्यवसाय और शुद्ध मन परिणाम से आराधना युक्त समाधि मरण प्राप्त करके उत्तम कल्प देव

लोक में देवता की पदवी को प्राप्त हुआ। वहां अपने मित्र दुर्गत देवता और स्त्री के साथ देवलोक के उत्तम सुख भोगने लगा। इस भव से सातवें भव में सिद्धि को प्राप्त होगा।

हे भव्य जनों! जो धीर प्राणी इस संसार में हैं उनके उपकारार्थ यह फल पूजा की महिमा कही है। कई उपसर्गों का मिटाने वाला, सब सुख का दाता, मनुष्यों के उपकार के लिये संक्षेप से यह महात्म्य कहा है। भव्य प्राणियों के वर्णन करने योग्य, भवभ्रमण दुःखों को दूर करने वाली इस फलपूजा को श्रद्धा और भक्ति सहित करना उचित है।

इति श्री जिनेन्द्र पूजाष्टके फलपूजोधम विषये दुर्गतानारी-शुक्र मिथुन कथानकं सप्तम् समाप्तम्।

——:*:——

अधुना जल पूजामष्टमी माह।

गाथा—ढोवइ जो जल भरियं, कलसं भत्तीये वीयरागाणम्॥
सो पावइ काल्लणं, जह पत्तं विप्पधूआए ॥ १ ॥

संस्कृतच्छाया--ढौकते यो जलभृतं, कलशं भक्त्यावीतरागाणम् ॥
स प्राप्नोति कल्याणं, यथा-प्राप्तं विप्र कन्यया ॥ १ ॥

व्याख्या—जो भव्य प्राणी श्री वीतराग स्वामी के आगे जल से भरा हुआ कलश अर्पण करता है वह ब्राह्मण की पुत्री के समान कल्याण पाता है।

इस भरत क्षेत्रमें प्रसिद्ध सुरपुर सदृश ब्रह्मपुर नाम का सुन्दर नगर है। वहा हजारों ब्राह्मण रहते थे, उनमें एक चार वेद वेत्ता, सोमिल नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी सोमा नामक स्त्री थी, उसका पुत्र यज्ञ केतु नामक था। निर्मल वंश में उत्पन्न हुई सदा धर्म में उद्यम करने वाली सोमश्री नामक उसकी स्त्री थी। वह श्वशुरादिकों में अत्यन्त विनीत थी, सब परिवार के साथ सुखसे रहती थी। इस प्रकार रहते २ बहुल समय व्यतीत होगया।

एक दिन सोमिल विधि के वश रोग से मरण को प्राप्त हुआ। पुत्रने मृत कार्य आरम्भ किया, सोमा अपनी सोमश्री आदि पुत्र वधुओं को कहती है—हे वधुओ! जलांजलि के लिये जल से भरे घड़े लाओ और

श्वशुर के लिये प्रीति दान दो। यह सुन कर घड़े ग्रहणकरके घर से निकलीं और जलपूर्ण तालाव से घड़ों को भर कर लाती थीं, मार्ग में एक जिन मन्दिर था वहां सोमश्री निकलती हुई ने साधुके मुखसे सुना कि जो जिन राज की भाव से जलपूजा करता है वह रमणीय सुख और परमपद (मुक्तिस्थान) पाता है। जो प्राणी जल से भरा हुआ निर्मल घड़ा अथवा गागर (मटकी) से श्री जिनराज के अगाड़ी भक्ति से पूजा करे, वह निर्मल ज्ञान पावे अथवा उसकी आत्मा सद्गति को प्राप्त हो।

ऐसे साधु के वचन सुन कर सोमश्री को पूजा का भाव उत्पन्न हुआ, उसने अपना जलपूर्ण घड़ा श्री जिनवर के आगे चढ़ा दिया, और सामने खडी होकर विनती करने लगी। हे स्वामी! मैं मूढ़ हूँ, आपकी स्तुति और भक्ति नहीं जानती हूँ परन्तु आपके आगे जलपूर्ण घड़े का पुण्य मुझे हो। इस प्रकार सामने खड़ी हुई विनती करती है।

यह सब बात देखकर साथ वाली अन्य स्त्रियों ने जाकर सासू से कहा, हे सोमे! तुम्हारी पुत्र वधू सोमश्री ने श्री वीतराग को जल घट का दान दिया है।

ऐसे वचन सुनते ही उस सोमा ब्राह्मणी ने क्रोध किया और अग्निवत् ज्वलित हुई बोली, जो घड़ा

हमारे पतिको जलांजलि देनेको लाया गया था, वह इसने जिन मन्दिरमें कैसे चढ़ा दिया ? इतनेमें उसकी पुत्रबधू सोमश्री आई उसको देखकर अत्यन्त कुपित हुई लकड़ी लेकर कहने लगी, अरी ! दुष्टा ! तू हमारे घर से घड़ा लेकर गई थी, वह क्यों नहीं लाई ? विना घड़े के अन्दर मत आ, घडा लेकर आ। फिर कहने लगी तुझे जिन-पूजा वल्लभ (प्रिय) लगी, जो ब्राह्मण निमित्त लाया हुआ घड़ा देदिया और तर्पण नहीं कराया। इस प्रकार बार २ उसको भर्त्सना कर के घर से बाहर निकाल दी।

तब वह विलाप करती, रोती हुई कुम्हार के घर गई और बोली हे बान्धव ! मुझे एक घडा दे और मेरे हाथ का कंकण ग्रहण कर। यह सुन कुम्हार बोला हे बहिन। तू क्या मांगती है ? और क्यों घबराती है ? विलाप करने और रोने का क्या कारण है ? तब सोमश्री ने उससे अपना सब वृत्तान्त कह दिया। सुन कर कुम्हार ने कहा हे बाई ! तू धन्य है, तूने जिन मन्दिर में जल दान दिया, वह बहुत अच्छा किया। मनुष्य जन्म पाने का यही लाभ है, यह ही मुक्ति मार्ग का सुखदायी बीज है। ऐसी अनुमोदना करते हुए उसने शुभ कर्म का उपार्जन किया। शास्त्र में कहा है-जो जीव धर्म की अनुमोदना करता है वह संसार-समुद्र से पार हो जाता है।

वह कुम्हार बोला हे बहिन ! यह घड़ा ले और अपना कार्य कर, मुझसे बहिन के हाथ का कंकण कैसे लिया जाय ? यह कह कर उसको घड़ा देदिया। सोमश्री ने सुन्दर घट लेकर पवित्र, निर्मल जल से भर सासू को लाकर देदिया।

सासू ने जलसे भरा हुआ घड़ा देखा, प्रसन्न हुई लेकर आनन्द को प्राप्त हुई, उसको बड़ा पश्चाताप हुआ। पर उसने अन्तराय कर्म बांध लिये, वे कर्म उसको भव २ में कभी नहीं छोड़ते हैं, अत्यन्त कष्ट देते हैं। कुम्हार ने शुभ कर्म उपार्जन किये, जिससे अन्त में अच्छे भावों से मर कर कुंभपुर नामक नगर में श्रीधर नामक राजा हुआ। वहां उसने राजलक्ष्मी पाई और उसकी एक श्रीदेवी नामक रानी थी, उससे अनेक सुख भोगता था। उसको पुण्य के प्रभाव से मांडलिक राजा प्रणाम करते थे और आज्ञा मानते थे। उसकी ऐसी महिमा थी कि सब छोटे राजा उसके चरण कमल में अपना शिरो मुकुट रखते थे और यह राज्य सुख भोगता था।

इसी अवसर में वह सोमश्री ब्राह्मणी शुभ ध्यान से मर कर उसी राजा के श्रीदेवी नामक रानी के गर्भ से कन्या उत्पन्न हुई। राजा ने बड़ा आनन्द किया, शुभ ग्रहों के योग से यह सबको प्रिय लगती थी। माता पिता को अत्यन्त वल्लभा थी। यह सब प्रभाव श्री जिनराज की जल पूजा का था।

गर्भ अवस्था में माता को जिन पूजा का दोहद उत्पन्न हुआ कि मैं स्वर्ण कलश से श्री जिनराज को स्नान कराऊं, उसकी ऐसी इच्छा राजा ने पूर्ण की। शुभ दिवस में उसका जन्म उत्सव हुआ, सब परिवार, कुटुम्ब को दशवें दिन बुलाया, चन्द्रमा सूर्यादि की पूजा कराई गई, कई मित्र सज्जनों को अन्न, वस्त्र, आभूषणों से सत्कार करके उसका नाम कुंभश्री स्थापन किया। वह कन्या कल्पवल्ली के समान प्रतिदिन माता पिता के आनन्द के साथ बढ़ने लगी। जब वह राजकुमारी चन्द्रमा की शुक्लपक्ष की कला के समान बढ़ती हुई पांच वर्ष की हुई तब चौसठ कला पढ़ने लगी। बाल्यावस्था छोड़ कर रमणीय यौवनावस्था को प्राप्त हुई। पिता के घर में रहती हुई देवलोकवत् इष्ट परम सुख भोगती थी और माता पिता को अत्यन्त वल्लभ थी।

इसी अवसर में बहुत साधुओं के परिवार सहित चार ज्ञान को धारण करने वाले मुनिराज उस नगर के पास उद्यान में आकर विराजमान हुए। उन आचार्य का नाम विजयसूरि था। राजा अपने नगर के पास मुनि को आये हुए जानकर परिवार सहित चतुरंगिणी सेना साथ ले वन्दना करने को वहां आया। अपने साथमें रानी और पुत्री कुंभश्रीको भी लाया था, नगरके नर नारियोंके झुण्डके झुण्ड भी साथ थे। दूर से ही मुनिराज को देख कर हाथी से उतर पड़ा और राजचिन्ह छोड़ कर रानी और पुत्री सहित तीन प्रदक्षिणा देकर वन्दना करने

लगा। दूसरे लोगों ने भी भक्ति के साथ नमस्कार किया, भक्ति और श्रद्धा सहित पुत्री ने मन में आल्हादित होकर वन्दना की।

सब लोग राजा सहित धर्म सुनने की इच्छा से मुनिराज के पास बैठ गये। इसी अवसर में एक दरिद्र स्त्री आई, जिसके पुराने फटे कपड़े थे और शरीर धूल से भरा था, साथ में कई बालकों का परिवार था, उसके मस्तक में मांस के पिंड समान गढ़, गूमड़ (स्फोटक) उठे हुए थे। उनके दुःख से अत्यन्त दुःखित थी। वह आ कर गुरु के चरणों के पास बैठ गयी। राजादिकों ने उसको दया दृष्टि से देखा। तब राजाने हाथ जोड़ विनती की हे भगवन्! यह स्त्री कौन है? अत्यन्त दुःखित क्यों है? मुझे भयकर शरीर से राक्षसी मालूम होती है। इस प्रकार राजाके वचन सुन मुनिराज बोले–हे राजन् सुनिये, तुम्हारे इसी नगर में दुर्गति नामक गृहस्थ रहता है। उसकी वेणुदत्ता नामक यह पुत्री है। बहुत काल पीछे इसी जन्म में इसकी दरिद्र अवस्था हुई, माता पिता इसको देख कर कर्मयोग से मरण को प्राप्त हुए। यह सुन मस्तक कम्पा कर राजा ने आश्चर्य के साथ मन में विचार किया, देखो इस संसार में जीवों के कर्मयोग से विषम परिणाम होता है। वह दुर्गता स्त्री मुनि के वचन सुन कर गद्गद स्वर से रोती हुई बोली, हे भगवन्! आप कृपा कर कहिये मैंने पूर्व जन्म में कौन से

पाप कर्म किये हैं? जिससे मेरी यह दशा हुई। यह सुन कर मुनिराज बोले, हे भद्रे! सुन, मैं तेरे पूर्व जन्म के सम्बन्ध कहता हूँ, कि किस प्रकार तुमने अशुभ कर्म उपार्जन किये।

हे भद्रे! इस भव से पूर्वभव में तू ब्रह्मपुर नामक नगर में सोमा नामक ब्राह्मणी थी, तेरी पुत्र वधू सोमश्री नामक थी, उसने श्री जिनराज के सामने निर्मल जल पूर्ण कलश का दान दिया था, तुमने सुनकर अत्यन्त क्रोध किया और ऐसे कठोर वचन कहे कि तूने जिनके सामने जल का घडा क्यों चढ़ा दिया? यह बड़ा अन्तराय कर्म तूने बांधा, इस दोष से तूने यह भारी दुःख पाया। यह सुन वह दुर्गता स्त्री ने बड़ा भारी पश्चात्ताप किया, और कहा हे भगवन्! यह अन्तराय कर्म किस उपाय से दूर होगा? कृपा कर कहिये।

तब मुनिराज बोले हे भद्रे! ऐसे कर्म पश्चात्ताप से छूट जाते हैं एक भव में बंधे हुए कर्म बहुत काल तक नहीं रहते। शास्त्र में कहा है, जो जीव शुद्ध भाव से किये हुए कर्मों का पश्चाताप कर लेता है तो उसके कर्म मृगावतीके समान दूर हो जाते हैं। जैसे मृगावती को अतीचार लगा था, पर चन्दन बाला के कहने से मन में उसने बहुत पश्चाताप किया जिससे तत्काल उसको केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था, इसलिये पश्चाताप के बड़े फल हैं।

यह सुनकर दुर्गता स्त्री ने मुनिराज से हाथ जोड़ कर खडी हो पूछा-हे भगवन्! वह सोमश्री मरकर

अब कहां उत्पन्न हुई है ? उस पुण्य से कौनसी गति उसने पाई है ? अब आगामी भव में कौनसी गति पावेगी ? इसका अनुमान आप मुझको कह कर सुनाइये।

तब मुनिराज बोले, उस सोमश्री का जीव इस समय अपने पिता के चरण कमल के पास बैठा है। इस समय मनोवांछित सुख भोगता है, यहां से फिर पूर्ण आयु भोग कर समाधि मरण प्राप्त हो देवताओं के सुख पावेगी, फिर मनुष्य भव के सुख पावेगी, फिर भोगावली कर्म भोग कर इस भव से पांचवे भव में केवल ज्ञान प्राप्त होकर अन्त में मुक्ति पद को प्राप्त होगी। यह सब श्री जिनराज की जलपूजा का महा प्रभाव है। इसी कारण इस भव में भी बड़े २ सुखों का उदय हुआ है।

यह बात गुरू के मुख से सुनते ही कुंभश्री नामक राजपुत्री को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, और अपने पूर्व भव का सम्बन्ध जाना, उठकर गुरू के चरणों में प्रणाम करने लगी। चरण स्पर्श करके भक्ति से हाथ जोड कर बार २ बन्दना करने लगी और आचार्य के सामने खड़ी होकर अपने पूर्व भव की बात पूछने लगी हे भगवन्! उस कुम्हार का जीव इस भव में कहां उत्पन्न हुआ है ? जिसने मुझको भक्ति से घड़े का दान दिया था वह गुणवान् मुझको अत्यन्त प्यारा है। वह कौन से उच्चकुल में किस आचार से रहता है। यह बात मुझको कृपा कर कहिये।

तब गुरू बोले हे भद्रे ! वह कुंभकार महानुभाव भक्ति से अनुमोदना गुण को धारण करता हुआ तेरी भक्ति का स्मरण चित्त से करता हुआ मर कर इस भव में तेरा पिता राजा हुआ है।

यह बात गुरू के मुख से सुनकर राजा मन में अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, उठकर बार २ गुरू को प्रणाम करने लगा। पूर्व भव का चरित्र जाति स्मरण ज्ञान से जाना, जैसे गुरू ने कहा वैसे आद्योपान्त अपने पूर्व भव का सम्बन्ध प्रत्यक्ष देखा, देखकर गुरू से इस प्रकार कहने लगा। हे भगवन् ! जैसे आपने कहा वैसे ही यथा स्थित वार्ता है, हमने भी जाति स्मरण ज्ञान से अपने पूर्व भव का सम्बन्ध जाना।

अब दुर्गता स्त्री के पास कुंभश्री ने आकर पूर्व भव के अपने अपराध क्षमा कराये, और बार२ पैरों में प्रणाम किया। दुर्गता ने भी सरल स्वभाव से महासती कुंभश्री से कहा हे बहिन ! यह मेरे रोग रूप घड़े का भार उतारो, कृपया मेरी आत्मा का हित करो। तब कुंभश्री ने उसके मस्तक पर अपना हाथ फेरा, जिससे उसकी व्याधि मिट गई।

ऐसा चरित्र देख कर राजा ने अपनी पुत्री और बहुत से लोगों के साथ उज्वल भाव भक्ति से श्री वीतराग भगवान् की जलपूजा करने की तय्यारी की। कुंभश्री भी जैसे पिता करता है वैसे ही श्री जिनराज की

जल पूजा करने लगी, दोनों संध्याओं के समय पिता पुत्री स्वर्ण कलश जलसे भरा कर श्रीवीत राग भगवान् को मज्जन (स्नान) करा कर राग, भक्ति प्रगट करते हैं।

वह मुनिराज भी भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए संसार के दुःख से छुड़ाते हुए, स्वयं आत्म विचार करते, हुए जीवों को संसार से पार उतारते हुए, पृथ्वी मण्डल के बीच जगह २ विहार करने लगे। स्थान २ पर, अपना महात्म प्रकट करते हुए, गांव में एक रात्रि और नगर में तीन रात्रि निवास करते हुए विचरने लगे

वह दुर्गता नारी शुद्ध मन से उपदेश सुनकर वैराग रंग सेरंगी हुई एक साध्वी के पास पञ्च महाव्रत अंगीकार कर निरति चार चारित्र पालती हुई ग्राम, नगर और पृथ्वी मण्डल में विचरने लगी। एवं धर्म ध्यान करते हुए उसका समय व्यतीत होता था।

राजा की पुत्री कुंभश्री शुद्ध परिणाम से आयु का पालन कर यहां से मरकर ईशान देवलोक में देवता उत्पन्न हुई, वहां देव सुख भोगने लगी, कई गीत, नाटक, कला और विविध प्रकार विलास करती हुई समय विताती थी। वहां से च्युत होकर मनुष्य भव में मनुष्यावतार लिया, वहां भी राज्य सुख ऋद्धि भोग कर देवता हुई। फिर मनुष्य भव पाकर वैराग से दीक्षा लेकर केवल ज्ञान प्राप्त कर पांचवे भव में सिद्धपद को प्राप्त हुई।

इति श्री विजयचन्द्र केवली विरचित श्री अष्ट प्रकार पूजा कथानक समाप्तम् ।

Published by·--- Sukan Kunwari mother of Raja Vijay Singh ji Azimganj (MURSHIDABAD)